अखण्ड ज्योति





श्रीराम शर्मा आचार्य SRI RAM SHARMA ACHARYA

अगस्त १९९१

☀ सूची ☀

इस पत्रिका के सभी लेख परम पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा लिखे गये हैं। हरिद्वार शांतिकुंज संस्थान से इनका सम्पादन कार्य होता है, वंदनीया माताजी अपनी तपसाधना में वहीं संलग्न हैं। पूज्य गुरुदेव की जीवन अवधि के अंतिम बीस वर्ष की साधना स्थली शांतिकुंज सप्त सरोवर क्षेत्र में हरिद्वार-ऋषिकेश मार्ग पर हरिद्वार से ६ किलो मीटर दूर स्थिति है।

प्रकाशक-अखण्ड-ज्योति संस्थान, मथुरा-२८१००३

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

अखण्ड ज्योति

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् !

वर्ष ५४
अंक ८
अगस्त १९९१
वि.सं. श्रावण–भाद्रपद २०४८

संस्थापक–वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

वार्षिक चन्दा
भारत में ३५/– विदेश में ३००/–
आजीवन ५००/–

परमात्म सत्ता से सही मायने में साक्षात्कार

प्रतिमाओं के रूप में जो दिखाई देते हैं, वे भगवान बोलते नहीं । परन्तु अंतःकरण वाले भगवान ज़ब दर्शन देते हैं तो बात करने के लिए भी व्याकुल दिखाई देते हैं । हमारे पास कान हैं । वे यदि सुनने का प्रयास करें तो सुनाई पड़ेगा "मेरे इस अनुपम उपहार–मनुष्य जीवन को इस तरह न बिताया जाना चाहिए जैसे कि बिताया जा रहा है । ऐसे न गँवाया जाना चाहिए जैसे कि गँवाया जा रहा है । ओछी रीति–नीति अपनाकर मेरे प्रयास–अनुदान का उपहास न बनाया जाना चाहिए ।"

जब और भी बारीकी से इन अंतःकरण वाले भगवान की भाव–भंगिमा और मुखाकृति को देखते हैं तो प्रतीत होता है कि वे कहना चाहते हैं कि "बताओ भला, इस जीवन सम्पदा का क्या इससे अच्छा उपयोग और कुछ नहीं हो सकता था जैसा कि किया जा रहा है ?" वे संभाषण जारी रख अपने प्रश्न का उत्तर चाहते हैं ।

हम ईश्वर को मानते हों तो उसकी आवाज भी सुनें, उससे वार्तालाप भी करें । प्रतिमा की मात्र दर्शन–झाँकी हमें क्या दे सकेगी ? परमात्मा का "दर्शन" आत्मसात कर लेने की उत्कण्ठा इच्छा प्रबल अंदर से उठने लगे तो मानना चाहिए कि सही अर्थों में आत्मसाक्षात्कार–ईश्वर का दर्शन हो रहा है ।

अंतरंग के ईश्वर की उपासना का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि हम अपनी इच्छाओं–कामनाओं से अपने आपको खाली कर दें । उसी की इच्छा व प्रेरणा के आधार पर चलते रहने की बात सोचें तो यह समर्पण भाव हमें सतत् शाश्वत आनन्द की अनुभूति कराता रहेगा । ऐसा दर्शन हमें हो सके तो वस्तुतः हम धन्य हो जायँ ।

प्रेम भारी नहीं, हल्का है

प्रेम अन्तःकरण की एक ऐसी उपज है जो शुष्क-से शुष्क, कठोर से कठोर और कितने ही दिशा भ्रांत जीवन को सरस, सरल और प्रकाशवान् बना देती है । प्रेम से मधुर संसार में और कुछ नहीं । जब ऐसे दो प्राणी मिलते हैं तो आनन्द की त्रिवेणी प्रवाहित होने लगती है चुम्बक के दोनों ध्रुव दो विपरीत दिशाओं में अनन्तकाल से जुड़े हैं पर उन दोनों का एक ही प्रयत्न है । पुनः मिलन का प्रयत्न अनादि काल से दोनों ध्रुवों की धारायें एक-दूसरे को आकर्षित करने में लगी हैं । जीवन की प्रत्येक सूक्ष्म सत्तायें अलग-अलग होकर भी अपने प्रेमी के प्रति अद्यतन समर्पित होकर इस सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं कि विरह में भी प्रेम निखरता है, कम नहीं होता ।

अविश्वास को विश्वास में, निन्दा को प्रशंसा में, तर्क-वितर्क को निष्ठा और औद्धत्य को सेवा में बदल देने, की शक्ति केवल प्रेम में ही है । प्रेमी कभी आलस्य में घिरा बैठा रहे, ऐसा हो ही नहीं सकता । अपने प्रेमास्पद की कितनी इच्छायें कहीं चुपचाप बैठे पूरी होती हैं ? नहीं तो फिर दोनों ही सक्रिय होते हैं-कुछ न कुछ जुटाते हैं और एक-दूसरे को देते हैं । परस्पर आदान-प्रदान की यह धारा ही तो समस्त चेतना का आधार है । सृष्टि में प्राण व जीवन प्रेम के ही कारण विद्यमान हैं ।

एक मन्दिर पहाड़ की चोटी पर था । फिर भी दर्शनार्थी ऊपर जा रहे थे "दर्शन करना अवश्य है" इसलिये लोग बराबर चढ़ाई चढ़ते जा रहे थे । एक महात्माजी भी थे, वह भी भगवान की मूर्ति के दर्शनों के लिये ऊँची-नीची घाटी चढ़ते जा रहे थे, पर थकावट के कारण उनका बुरा हाल था, इतनी चढ़ाई कैसे पार होगी यह वे समझ नहीं पा रहे थे । बार-बार थक कर बैठ जाते थे । भगवान् के मिलन में आनन्द है तो उसकी साधना में आनन्द क्यों नहीं, ? उनके मन में एक तर्क उठा इस तर्क ने उनका मन ढीला कर दिया ।

पीछे मुड़कर देखा तो एक आठ नौ वर्षीय बालिका भी पहाड़ की चढ़ाई चढ़ रही थी । उसकी पीठ पर दो वर्ष का एक बालक था, तो भी उसके मुख-मण्डल पर थकावट का कोई चिन्ह नहीं था । हँस-मुख बालिका कभी बच्चे को थपथपाती, चूमती चाटती और कभी नाराज सी होकर उससे बातचीत करती । बच्चा उसे शिकायत वाली मुद्रा में देखता तो बालिका कहती -"बुद्धू" और हँसती हुई फिर दुगुने उत्साह से चढ़ाई चढ़ने लगती है ।

मन तो विचारों का भाण्डागार है, अभी थोड़ी देर पहले तर्क उठा था अब वह कौतूहल में बदल गया । मेरे पास कोई बोझ नहीं, शरीर भी पुष्ट है फिर भी थकावट और इस नन्हीं सी बालिका की पीठ पर सवारी है, तो भी उसके मुख पर थकावट का कोई चिन्ह नहीं । उन्होंने पूछा-बालिके ! तुम इतना भारी बोझ लिये चल रही हो, थकावट नहीं लगी क्या ?

संग्रह के लिए मत ललचाओ, विभूतियों को इस हाथ से उस हाथ जाने दो । परिग्रह का बोझ जितना ही बढ़ता है, मनुष्य उचित को सोचने और करने में असमर्थ होता जाता है ।

"भारी नहीं है बाबा !" लड़की ने महात्मा को चिढ़ाने वाली बात बनाकर कहा-"यह मेरा भाई है, देखते नहीं ? इसके साथ अठखेली करने में कितना आनन्द आता है " यह कह कर बालिका ने शिशु के कोमल कपोल चूमे और एक नव-स्फूर्ति अनुभव करती हुई फिर चढ़ाई चढ़ने लगी ।

महात्मा जी ने अनुभव किया यदि भगवान् को प्राप्त करने की साधना कठोर और कष्टपूर्ण लगती है तो यह दोष भगवान् का नहीं, जीवन नीति का है । वस्तुतः कठिन कर्तव्य और कठिनाइयों से भरे जीवन में भी मस्ती का आनन्द लिया जा सकता है । यही नहीं व्यक्तित्व के निर्माण और पूर्णता का लाभ भी इसी तरह हँसते-थिरकते प्राप्त किया जा सकता है अपने जीवन में इस सत्य की गहन अनुभूति के बाद । तभी तो प्रसिद्ध वैज्ञानिक जूलियन हक्सले ने लिखा है "व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए जीवन में प्रेम का आरोपण बहुत जरूरी है ।"

*

आध्यात्मिक महाक्रान्ति की बेला आ पहुँची

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है, मनुष्य, समाज, संस्कृति और सभ्यता सभी को इस परिवर्तन प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। कितनी ही प्रथायें, मान्यतायें एवं व्यवस्थायें एक निश्चित अवधि के बाद जब जराजीर्ण होकर रूढ़ियों का रूप ग्रहण कर लेती हैं तो उनमें सुधार–परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। समाज के सुनियोजित संचालन और विकास की दृष्टि से समाज व्यवस्था एवं शासनतंत्र आदि में भी समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु जब कभी अराजकता, अव्यवस्था तथा अवांछनीयता की ऐसी प्रबल परिस्थितियाँ विनिर्मित हो जाती हैं जिनमें सुधार–परिवर्तन के लिए विरोधात्मक प्रयत्न कारगर नहीं होते, तो व्यापक परिवर्तन करने वाली महाक्रान्तियों का जन्म होता है। वे आँधी–तूफान की भाँति आती हैं तथा अपने प्रवाह में समाज में उस कचरे को बहा ले जाती हैं जिनके कारण समाज में अव्यवस्था फैल रही थी।

विश्व इतिहास में पिछले दिनों ऐसी कितनी ही महाक्रान्तियाँ हुई हैं जो चिरकाल तक स्मरण की जाती रहेंगी और लोकमानस को महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराती रहेंगी। इनका उद्देश्य प्रायः अनौचित्य का समापन और औचित्य का अभिवर्धन ही होता है। इनमें ध्वंस और सृजन की दुहरी प्रक्रिया चलती है। प्रयास संघर्षात्मक होते हुए भी क्रान्ति सृजन की एक ऐसी प्रक्रिया है जो उपयोगी मानवीय मूल्यों के पुनर्स्थापना एवं सुनियोजन के लिए आवश्यक है, पर प्रायः जनमानस में क्रान्ति का स्वरूप हिंसात्मक परिवर्तन के रूप में ही प्रचलित है और आर्थिक विषमता को उसका मूल माना जाता है। कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा ने ही वस्तुतः इस मान्यता को जन्म दिया है कि समाज में मूलभूत प्रेरक शक्ति अर्थ है। आर्थिक असन्तुलन ही समाज की विभिन्न समस्याओं को जन्म देता है। यह असंतुलन जब चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो क्रान्तियों का सूत्रपात होता है। उनके अनुसार विश्व की अधिकांश क्रान्तियाँ आर्थिक विषमता के कारण हुई हैं। परन्तु यह मान्यता एकांगी और अपूर्ण है। वस्तुस्थिति की गहराई में पहुँचने के लिए इतिहास का पर्यवेक्षण–अध्ययन करना होगा।

ऐतिहासिक महाक्रान्तियाँ यह सिद्ध करती हैं कि मनीषा जब कभी आदर्शवादी ऊर्जा से अनुप्राणित होती है तो अनेकों सहचरों को खींच बुलाती है और जनसहयोग के सहारे वह कार्य कर दिखाती है जिसकी पहले कभी कल्पना तक नहीं की गयी थी। प्रख्यात फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास यह बताता है कि उन दिनों फ्रांस में निरंकुश शासकों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। अत्याचार, अन्याय की चक्की में जनता पिस रही थी। नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अधिकार लगभग समाप्त हो गये थे। फ्रांसीसी क्रान्ति में समानता का विचार अर्थ के आधार पर नहीं, बुद्धि के आधार पर मानवतावादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में किया गया। मौलिक प्रेरणा यह थी कि मनुष्य जब जन्म लेता है तो स्वतंत्र तथा एक समान होता है, इस स्वतंत्रता तथा प्राकृतिक समानता को जबरन प्रतिबन्धित नहीं किया जाना चाहिए। इस विचारणा ने फ्रांसीसी क्रान्ति का सूत्रपात किया। सूत्रधार बने वाल्टेयर और रूसो। तब तक रूसो की सशक्त समाजवादी विचारधारा प्रभाव में आ चुकी थी जिसने उस देश के बौद्धिक समुदाय में प्रेरणा भर कर अनीति और अत्याचार के विरुद्ध उकसाया। 'जोन आफ आर्क' नामक एक किशोरी ने उस समूचे देश में स्वतंत्रता की ऐसी ज्योति प्रज्वलित करायी कि दलित–पीड़ित जनता दीवानी होकर उठ खड़ी हुई और पराधीनता की जजीरें टूट कर रहीं।

इसी तरह इंग्लैण्ड की प्यूरिटन क्रान्ति पर प्रभाव बाइबिल में प्रतिपादित समानता के विचारों का था जिसे राजनीतिक समर्थन भी मिल गया। उन दिनों ब्रिटिश पार्लियामेंट लोकतांत्रिक नहीं थी, अधिकार भी सीमित थे। साम्राज्यवादी शासन का देश पर प्रभुत्व था। असमानता की खाई पाटने की तीव्र आवाज उठी। धार्मिक एवं राजनीतिक दोनों ही मंचों से एक साथ साम्राज्यवाद के विरोध में वैचारिक वातावरण तैयार हुआ जिसने क्रान्ति का सूत्रपात किया।

हैरियट स्टो एवं मार्टिन लूथरकिंग द्वारा दासप्रथा के विरुद्ध अमेरिका में जिस क्रान्ति का सूत्रपात हुआ वह मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए था। काले, गोरों के बीच भेदभाव की प्रवृत्ति चरम सीमा पर थी। वर्ण भेद के पनपते विष वृक्ष ने समाज की उन जड़ों को खोखला बनाना आरंभ कर दिया जिन पर मनुष्यता अवलम्बित है। काले नीग्रों पर गोरों का अत्याचार–अनाचार बढ़ता ही जा रहा था। उत्पीड़ित मानवता के व्यथित स्वर ने विद्रोह की आवाज फूँकी।

फलस्वरूप सर्वत्र अमानवीय दासप्रथा के विरुद्ध आवाज उठी जो क्रमशः तीव्रतर होती गई और दासप्रथा का अन्त होकर रहा।

इतिहास की ये महत्वपूर्ण क्रान्तियाँ न तो अर्थ से अभिप्रेरित थीं और नहीं इनका स्वरूप हिंसात्मक कहा जा सकता है जैसी कि आम मान्यता है। इनका लक्ष्य था व्यक्तिगत स्वातंत्र्य राजनीतिक लोकतंत्र तथा मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना। क्रान्ति का अर्थ है, व्यक्ति के अंतरंग और बहिरंग का आमूलचूल परिवर्तन। एक ऐसा परिवर्तन जो मनुष्य समुदाय को परस्पर एक दूसरे के निकट लाता तथा बाँधता हो। समाज की रुढ़िग्रस्त परम्पराओं और कुरीतियों को समाप्त करता तथा स्वस्थ परम्पराओं के प्रचलन के लिए साहस दिखाता हो। यह वैचारिक परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जनचेतना अनौचित्य का विरोध करने-छोड़ने तथा औचित्य को अपनाने के लिए विवश हो जाती है। क्रान्तियाँ अपने इसी स्वस्थ स्वरूप और महान लक्ष्य से अनुप्राणित ही वरणीय हैं।

मूर्धन्य मनीषियों का कहना है कि महान लक्ष्य की पूर्ति हिंसात्मक तरीके से नहीं विचार क्रान्ति के अहिंसात्मक आध्यात्मिक प्रयोग उपचारों द्वारा ही संभव है। भगवान बुद्ध का धर्म चक्र प्रवर्तन क्रान्ति का आदर्श और समग्र स्वरूप था। गान्धी का स्वराज्य आन्दोलन भी इन्हीं आदर्शों से अभिप्रेरित था। मात्र बाह्य परिवर्तनों से समाज की अनेकानेक समस्याओं का समाधान होना संभव रहा होता तो कभी का हो गया होता। विश्व में कितनी हिंसात्मक क्रान्तियाँ हुई हैं। सत्ता में परिवर्तन भी हुए हैं, पर मानव जाति की मूल समस्यायें अपने स्थान पर यथावत् बनी हुई हैं। रूस फ्रांस, अमेरिका, ब्रिटेन की प्रख्यात क्रान्तियों के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि इन देशों में मानवतावादी व्यवस्था स्थापित हो गयी, असमानता की खाई पट गयी है और आपसी स्नेह-सौहार्द्र की मात्रा बढ़ी है। सत्ता परिवर्तन के सीमित आवेग तक सीमित रह जाने वाली हिंसात्मक क्रान्ति की पद्धति से किसी भी समस्या का स्थायी हल नहीं निकल सकता। आये दिन तथाकथित क्रान्ति के नाम पर कितने ही देशों में सत्ता के उलट फेर की घटनायें देखी और सुनी जाती है, पर उनसे किसी देश में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना में सहयोग मिला हो, ऐसा उदाहरण शायद ही कहीं देखने में आया हो।

प्रख्यात विचारक लारेंस हाइड का कहना है कि वास्तव में परिवर्तन का केन्द्र विन्दु मनुष्य है। बाह्य परिस्थितियाँ तो आंतरिक परिवर्तन के अनुरूप बनती-बदलती रहती हैं। महान क्रान्तियों की सफलता मनुष्य के आन्तरिक परिवर्तन पर अवलम्बित हैं। समग्र क्रान्ति भी मनुष्य के भीतर ही संभव हैं। समाज की तो यथास्थिति ही प्रिय है, उसकी स्वयं की व्यक्तियों से अलग कोई सत्ता नहीं है। बाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन की बात सोचते रहने तथा मनुष्य के आंतरिक परिवर्तन की उपेक्षा करते रहने से कुछ स्थायी हल नहीं निकल सकता। इस सम्बन्ध में उनने कुछ सारगर्भित प्रश्न उठाये हैं जो विचारणीय हैं।

उनका कहना है कि क्या व्यक्ति का पुनर्निर्माण किये बिना समाज का निर्माण सभव है? मानव के भीतर बैठे हुए बन्दर एवं चीते को क्या मात्र बाह्य दबावों से नियंत्रित-परिवर्तित किया जा सकता है? क्या बिना किसी उच्च आदर्श अथवा शक्ति का आश्रय लिए हम वह प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं जिनकी उन समस्याओं के लिए आवश्यकता है जो समय-समय पर होती रहने वाली क्रान्तियों के बावजूद यथावत बनी रहती हैं? क्या मनुष्य-मनुष्य के बीच परस्पर सघन आत्मीयता विकसित किये बिना सच्चे समाजवाद की स्थापना संभव है? क्या हम केवल भौतिक शक्तियों का आश्रय लेकर बिना आध्यात्मिक जीवन का अवलम्बन लिए मानव जाति को स्थायी सुख-शांति प्रदान कर सकते हैं? इसका उत्तर स्वयं देते हुए लारेंस कहते हैं -"ऐसा कदापि संभव नहीं है। हमें स्थायी परिवर्तन के लिए एक ऐसी आध्यात्मिक महाक्रान्ति का श्रीगणेश करना होगा जो अहिंसात्मक हो, वैचारिक हो तथा जिसका लक्ष्य सम्पूर्ण विश्व मानव हो न कि सीमित व्यक्तियों अथवा एक समाज विशेष का मात्र परिवर्तन।"

पिछले दिनों राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं वैज्ञानिक क्षेत्र की क्रान्तियों ने मानव जीवन में आसाधारण परिवर्तन प्रस्तुत किया है। अब बारी आध्यात्मिक महाक्रान्ति की आयी है। कहना होगा कि आध्यात्मिक क्रान्ति द्वारा ही व्यक्ति का बाह्यान्तर परिवर्तन तथा समाज का पुनर्निर्माण संभव है। इस आध्यात्मिक महाक्रान्ति की चिनगारी उत्कृष्ट व्यक्तित्वों की आहुति पाकर प्रज्वलित होगी और संगठित प्रयासों के बलबूते दावानल का स्वरूप ग्रहण करेगी। नवसृजन के इस महाक्रान्ति आयोजन में उन भावनाशीलों को आगे बढ़कर हिस्सा बँटाना होगा जो समस्त मानवजाति का भविष्य उज्ज्वल देखने के इच्छुक हैं तथा मानव में देवत्व के उदय की संभावना को स्वीकारते हैं।

> *फूल चुनकर इकट्ठे करने के लिये मत रुको। चल पड़ो, तुम्हारी राह में फूल खिलते मिलेंगे।*

दीर्घायुष्य की ओर बढ़ते विज्ञान के चरण

क्या जराजीर्णता से बचे रहना और अपेक्षाकृत अधिक लम्बी आयुष्य प्राप्त करना संभव है ? अब इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में मिल रहा है । पुरातन ऋषि-मुनियों के ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, पर देखना यह है कि क्या अब भी ऐसा हो सकता है ?

मनोविज्ञानियों का कथन है कि यदि मस्तिष्क को अनावश्यक रूप से उत्तेजित या शिथिल न होने दिया जाय तो निरोग दीर्घजीवन संभव है । शरीर शास्त्री कहते हैं कि अनावश्यक आहार का भार पाचनतंत्र पर न लादा जाय तो बुढ़ापा आने पर भी जराजीर्णता का कष्ट न भुगतना पड़ेगा और मनुष्य लम्बे समय तक क्षमता सम्पन्न जीवन जी सकेगा ।

योगशास्त्र के ज्ञाता कहते हैं कि अंतःस्रावी ग्रन्थियों पर, ध्यानयोग द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है और हार्मोन्स-ग्रंथियों के स्रावों को दीर्घ जीवन के उपयुक्त बनाया जा सकता है । महर्षि चरक ने मनुष्य की स्वाभाविक आयु सौ वर्ष बताई है और कहा है कि जितने वर्ष में प्राणी की हड्डी प्रौढ़ होती है, उससे ठीक पाँच गुना अधिक आयु तक जीवित रहा और स्वस्थ दीर्घ जीवन का आनन्द उठाया जा सकता है । उनके अनुसार मनुष्य का पूर्ण विकास २० -२५ वर्ष में पूरा होता है अत उसे सौ से डेढ़ सौ वर्ष तक अवश्य जीवित रहना चाहिए । खान-पान का असंयम, दिनचर्या की अनियमितता, श्रम-विश्राम का असंतुलन और कृत्रिम अप्राकृतिक जीवन ही वे कारण हैं जो मनुष्य के स्वास्थ्य को बिगाड़ते और असामयिक जराजीर्णता उत्पन्न करते हैं । उनने नीरोग दीर्घायुष्य के लिए हित भुक-मितभुक की महत्ता का प्रतिपादन किया है ।

वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ताओं ने भी अब इस संदर्भ में गहन खोजें की हैं कि -'हम वृद्ध क्यों होते तथा मरते हैं ? क्या प्राणियों की अजरता अमरता संभव है ? उनका मत है कि मनुष्य सहित समस्त प्राणियों का जीवन जीन्स द्वारा नियंत्रित होता है । फ्लोरिडा विश्व विद्यालय के निदेशक लियोनार्ड हेफ्लिक के अनुसार प्रत्येक शारीरिक कोशिका का अपना एक 'जेनेटिक क्लाक ' होता है और हर कोषिका का विभाजन ५० बार से अधिक नहीं होता । अन्य विशेषज्ञों का मत है कि हमारे बुढ़ापे का कारण शरीर का रोगाणुओं तथा 'फ्री रैडिकल्स" द्वारा क्षतिग्रस्त होना है । फ्री रैडिकल्स चयापचय का उपोत्पादन है ।किन्तु अभी तक निश्चित रूप से यह नहीं ज्ञात किया जा सका कि हमारी आयु सीमा को निर्धारित करने वाली वह केन्द्रिय क्लॉक कौन सी है ।

विशेषज्ञों का कहना है कि हमारी आयु तीन प्रणालियों द्वारा प्रभावित होती है । ये हैं-मस्तिष्क , अंतःस्रावी प्रणाली तथा रोग प्रतिरोधी क्षमता-इम्यून सिस्टम । अंतःस्रावी प्रणाली द्वारा शरीर में हार्मोन्स स्रवित होते हैं, तो मस्तिष्क काया का केन्द्रिय संस्थान हैं जिससे समूचा कायतंत्र संचालित एवं नियंत्रित होता है । आम मान्यताओं के विपरीत आधुनिक वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि बढ़ती आयु के साथ मानव मस्तिष्क में कोई ह्रास उत्पन्न नहीं होता । विभिन्न खोजों के आधार पर अब यह सिद्ध हो चुका है कि केन्द्रिय तंत्रिका तंत्र में पुनर्जनन की क्षमता विद्यमान है और वृद्धावस्था तक स्नायु तंतुओं का उत्पादन निरन्तर करता रहता है । यदि आहार-विहार में असंयम न बरता जाय और चिन्तन क्षेत्र की विकृति से बचा जा सके तो मस्तिष्क की सहायक प्रणालियाँ स्वस्थ बनी रहेंगी और इस प्रकार मनुष्य १५० से २०० वर्षों तक के लम्बे जीवन का सुख भोग सकेगा ।

कैलीफोर्निया विश्व विद्यालय की मूर्धन्य वैज्ञानिक मेरियन डायमंड का कहना है कि मस्तिष्कीय स्नायु कोषों की संख्या दो तीन वर्ष की अवस्था में ही चरम सीमा तक पहुँच जाती है और जीवन पर्यन्त यथावत बनी रहती है । उनके अनुसार शारीरिक पेशियों का निर्माण इस प्रकार होता है कि वे सिकुड़ एवं फैल सकें । प्रयत्नपूर्वक उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है । इसी तरह मस्तिष्क की संरचना प्रेरणा ग्रहण करने के अनुरूप हुई है । प्रेरणाओं का सतत् उद्दीपन उसे समुन्नत बनाता है । इसके अभाव में मस्तिष्कीय कोष शिथिल पड़ते और क्षति-ग्रस्त होते जाते हैं । यह व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है कि वह मस्तिष्क की

क्षमता का सही उपयोग करे अथवा निष्क्रियता अपना-कर जराजीर्णता को आमंत्रित करे। अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिए उनने कितने ही प्रयोग-परीक्षण किये और पाया कि चूहे जैसे जिनकी सामान्य आयु ७०० दिन की होती है, वातावरण एवं सद्व्यवहार से प्रभावित होकर ९०० दिनों तक जीवित रहे।

जैव रसायन शास्त्रियों का कहना है कि ढलती आयु में आक्सीजन की खपत कम हो जाती है। इसका प्रमुख कारण पिट्यूटरी ग्रन्थि द्वारा स्रवित एक प्रकार के रसायन को माना जाता है। एलन गोल्डस्टीन के अनुसार यदि मस्तिष्क की अंतःस्रावी प्रणाली पर नियंत्रण किया जा सके तो न केवल एण्डोक्राइन ग्लैण्ड सक्रिय बनी रह सकती है, वरन् इम्यून सिस्टम भी अक्षुण्ण बना रहता है। जीवनी शक्ति की सशक्तता बनी रहने पर वृद्धावस्था में भी स्वास्थ्य यथावत् बना रहता है। उनके अनुसार थायमस ग्रन्थि के साथ भी आयु का सम्बन्ध है। उम्र बढ़ने के साथ ही वह छोटी होती जाती है तथा वृद्धावस्था तक अपने वास्तविक आकार का १/१० वाँ हिस्सा ही रह जाती है। ५० वर्ष के पश्चात् इसकी क्रियाशीलता घटने लगती है जिससे प्रतिरक्षी कोशिकाओं का उत्पादन भी मंद पड़ जाता है। आसन, प्राणायाम एवं ध्यान जैसी योगाभ्यास परक प्रक्रिया अपना कर मस्तिष्क सहित अन्तःस्रावी प्रणाली पर नियंत्रण साधा और उस आधार पर दीर्घकाल तक उन्हें सक्रिय कार्यरत बनाये रखा जा सकता है। विलियम अर्सलर नामक स्नायु विज्ञानी ने इस संबंध में गंभीरतापूर्वक प्रयोग किये हैं। उनने इससे संयमी वृद्ध जनों में भी युवाओं जैसी कार्य क्षमता देखी है।

स्वास्थ्य विज्ञानियों का मत है कि आहार की मात्रा को आरंभ से ही नियंत्रित करके हम १२० वर्ष तक सहज ही निरोगपूर्ण जीवन जी सकते हैं। आहार नियंत्रण के इस सिद्धान्त की पुष्टि कितने ही वैज्ञानिकों ने अपने-अपने अनुसंधान प्रयोगों द्वारा की है। चूहे एवं मछलियों पर किये गये अध्ययनों के पश्चात् रॉय वेल्फोर्ड एवं रिचर्ड वेन्डूक जैसे विज्ञानियों ने पाया है कि आहार नियंत्रण के कारण इन जीवों की उम्र सामान्य से तीन गुना अधिक बढ़ गई। मांसाहारी की तुलना में शाकाहारी अधिक दिनों तक जीवित पाये गये। उनकी उम्र में सात से १० वर्ष का अन्तर पाया गया।

उक्त अध्ययनों से निष्कर्ष निकलता है कि आहार-विहार संयमशीलता, विचार, जीवन प्रक्रिया तथा वातावरण आदि मिल कर मनुष्य की आयु सीमा का निर्धारण करते हैं। इतने पर भी मुख्य रूप से मस्तिष्कीय क्रियाकलापों को ही सर्वोपरि ठहराया जा सकता है। इसके ठीक बने रहने पर कहीं भी किसी भी स्थिति में मनुष्य स्वस्थ तथा दीर्घकाल तक सक्रिय एवं सक्षम बना रहा सकता है। सक्रिय बने रहने पर मस्तिष्कीय कोश वृद्धावस्था में भी विकास की प्रक्रिया से वंचित नहीं रहते हैं। इस आधार पर विज्ञानवेत्ताओं ने सठियाने की बात को भी निर्मूल बताया है और सुझाव दिया है कि विवेक बुद्धि अपनाकर हममें से हर कोई निश्चित रूप से पूर्ण आयुष्य को प्राप्त कर सकता है।

राजा जनक अपनी साज सज्जा के साथ मिथिला पुरी के राजपथ से गुजर रहे थे। उनकी सुविधा के लिए सारा रास्ता पथिकों से खाली कराने में राज कर्मचारी जुटे हुए थे। राजा की शोभा यात्रा निकल जाने तक राहगीरों को अपने आवश्यक कार्य छोड़ कर जहाँ के तहाँ रुक जाना पड़ रहा था।

वहीं गुजर रहे थे अष्टावक्र। उन्हें भी रोका गया तो वे इन्कार कर गये। राज कर्मचारी उन्हें समझाने लगे तो वे बोले-प्रजाजन के आवश्यक कार्यों को रोक कर अपनी सुविधा का प्रबन्ध करना राजा के लिए उचित नहीं। राजा अनीति करे तो ब्राह्मण का कर्तव्य है कि उसे रोके और समझावे।

जिद कर अष्टावक्र राजा जनक के पास पहुँचे और उन्हें खूब लताड़ा। जनक ने अपनी गलती अनुभव की तथा ऐसे योग्य व्यक्ति को राज गुरु के पद पर नियुक्त किया।

मनुष्य आहार में असंयम बरत कर और मस्तिष्क को उद्विग्न रखकर स्वयं ही जराजीर्णता को आमंत्रित करता है और जीवनी शक्ति के भण्डार को अनावश्यक रूप से खर्च करके सरल संभव आयुष्य का आधा-अधूरा ही उपयोग कर पाता है। स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का पालन करने और मानसिक संतुलन बनाये रखने पर सहज ही स्वस्थ दीर्घ जीवन का लाभ उठाया और अकालमृत्यु तथा जरा जीर्णता के अभिशाप से छुटकारा पाया जा सकता है। *

दो दिशाधाराएँ हैं, कौनसी वरण करें?

प्रगति की अनेक दिशाधाराएँ हैं। सभी आकर्षक, सभी सुन्दर, सभी सरस, सभी मधुर। पर इनमें किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। बिना दिशा निर्धारण किये कुछ करने में लगा रहना ऐसा ही है, जैसे बिना पहुँचने का स्थान सोचे किसी राह पर अनायास ही चल पड़ना। किसी भी दिशा में चल पड़ने वाला व्यक्ति कहीं भी पहुँच सकता है। उसकी अनिश्चित बुद्धि भ्रम जंजालों में फँसाती रहती है और एक काम अधूरा छोड़ कर दूसरे में लग जाने की सलाह देती रहती है। व्यक्ति समय बहुत गँवाते हैं और किसी नियत लक्ष्य तक पहुँच नहीं पाते।

सम्पदा एकत्रित करने का लक्ष्य सबसे सुहावना है क्योंकि पैसे के बल पर सुविधा साधन ही उपलब्ध नहीं होते किसी खर्चीले प्रपंच के सहारे प्रख्यात् भी बना जा सकता है। किन्तु कठिनाई यह है कि न्यायोपार्जित धन उतना ही कमाया जा सकता है जिससे निर्वाह चलता रहे, इन दिनों हर आदमी की इच्छा धनाढ्य बनने और प्रख्यात बनने की है। इन दोनों क्षेत्रों में इतनी प्रतिस्पर्धा है कि हर व्यक्ति एक दूसरे को पीछे धकेल कर स्वयं आगे बढ़ना चाहता है। इसके लिए सीधे और सरल तरीके काम नहीं देते। इस निमित्त आतंक अपराध, छल और प्रवंचना का आश्रय लेना पड़ता है। यह माध्यम ऐसे हैं जिनमें हिस्सा बँटाने वाले कुछ चापलूसों को छोड़ कर शेष के मन में स्वाभाविक घृणा उपजती है। ईर्षा और द्वेष का परिकर बढ़ता है। अनेक प्रतिद्वन्द्वी आपस में टकराते हैं फलतः उसी वर्ग के लोग आपस में कट मरते हैं। चोर लुटेरों का आपसी मनोमालिन्य इतना उभरता है कि एक दूसरे को किसी न किसी जाल जंजाल में फँसा देने का कुचक्र रचा जाता रहता है।

फिर मनुष्य के भीतर एक और सत्ता है जिसे आत्मा कहते हैं। वह कुमार्गगामी को काटती कचोटती रहती है, फिर आत्मा का अधिपति परमात्मा भी है जो घट-घट की भावनात्मक जानकारी रखता है। उसका कर्म विधान ऐसा अकाट्य है कि आज नहीं तो कल उसका प्रतिफल मिले बिना नहीं रहता। बुराई का अन्त बुरा होना निश्चित है। सच ही कहा गया है कि देर है अन्धेर नहीं। कुमार्ग पर चल कर कमाया हुआ वैभव टिकता नहीं। वह बीमारी, चोरी मुकदमेबाजी, नशेबाजी जैसी विपत्तियों और दुर्घटनाओं, प्रवंचनाओं के माध्यम से निकल जाता है। ठहरता नहीं। यदि ठहरा होता तो उचक्कों के अब तक महल बन गये होते और वे असंख्यों का नेतृत्व कर रहे होते। सभी उनका सम्मान कर रहे होते। वस्तुतः प्रकृति की व्यवस्था ऐसी है कि अनीति के मार्ग पर एक सीमा तक ही किसी को चलने देती है। इसके बाद उसकी बढोत्तरी बन्द हो जाती है और प्रतिक्रिया चल पड़ती है।

बीमारियों को एक बार भगवान धन्वतरि का सामना करना पड़ा। उनके पैर उखड़ गये। और तीखे प्रहार से बचने के लिए वे एक पर्वत पर जा छिपीं।

आखिर उन्हें ढूँढ़ ही लिया गया। जिज्ञासुओं ने पाया कि उस पहाड़ पर अनेक बीमारियों का निवास होते हुए भी उस क्षेत्र के निवासी पूर्ण निरोग हैं। यह भी आश्चर्य का विषय था सो कारण जानने के लिए वहाँ के निवासियों से पूछताछ की गई।

पर्वत पर बसने वालों ने कहा – बीमारियाँ हम लोगों पर आक्रमण तो करती हैं पर हम लोग यहाँ पहाड़ पर कठोर श्रम में निरत रहते हैं। पसीने के साथ बीमारियाँ बह कर बाहर निकल जाती हैं। परिश्रमी बीमार नहीं पड़ते।

इस वैभव सम्पदा वाले मार्ग के अतिरिक्त दूसरा मार्ग है अध्यात्म तत्वज्ञान के अवलम्बन का उसे अपनाने पर मनुष्य को नीति और सदाचार का आश्रय लेना पड़ता है। सन्तोषी और दूरदर्शी बनना पड़ता है। संतोषी इस अर्थ में कि दूसरे लोग जिन महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बुरी तरह मरते खटते हैं उन्हें छोड़ना पड़ता है। नीति मार्ग पर चलते हुए मनुष्य सीमित साधनों से ही काम चलाता है। अन्यान्य लोगों को अनीति की कमाई से गुलछर्रे उड़ाते देखकर मनको विचलित नहीं होने देता; सोचता है [illegible] गरिमा गिरा

कर यदि बड़प्पन का मन भावन खिलौना बजा भी लिया तो क्या ? इससे आत्म संतोष तो नहीं मिला और जो भीतर बेचैनी उद्विग्नता –अशान्ति बनी रही , उसकी बाहरी विडम्बनाएँ किस काम आईं ?

यही बात ख्याति के सम्बंध में भी है । उसकी आयुष्य बहुत छोटी है । एक दो दिनचर्या होती हैं इसके बाद लोग अपनी निज की समस्याओं में उलझ जाते हैं । दूसरों की यशगाथा गाने या निन्दा करने के लिए उनके पास समय ही नहीं बचता । जिस ख्याति के पीछे आतंक अनाचार छद्म, शोषण छिपा हुआ हो उसकी विचारशील क्षेत्र में कोई कीमत नहीं हो सकती । पाखण्डी धन एवं वैभव जब तब कमा तो लेते हैं, पर वह आत्म प्रताड़ना लोक भर्त्सना और दैवी दण्ड से बच नहीं सकते । क्षणिक मनोविनोद के लिए जो भविष्य को अन्धकारमय बनाले, वर्तमान में घृणा का पात्र बने, उसकी समझदारी को कौन सराहेगा ?

वर्तमान ही सब कुछ नहीं है । पहले आक्रमण में तो कमजोर भी नफे में रहते हैं । पछताते तब हैं जब उसकी प्रतिक्रिया लौटकर वापस आती है । मनुष्य जीवन क्षणिक नहीं है वह अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा । इस अवधि में मनुष्य जीवन सबसे महत्वपूर्ण है । इसे जो स्रष्टा की बहुमूल्य अमानत समझकर श्रेष्ठतम सदुपयोग करता है, वह भविष्य की लम्बी अवधि को सुख शान्तिमय बना लेता है । उसे नरक की यातनाएँ नहीं सहनी पड़तीं । साथ ही यह भी निश्चित है कि चौरासी लाख के चक्र में भी भ्रमण नहीं करना पड़ता है । देव जीवन जीने वालों को भव–बन्धनों में नहीं बंधना पड़ता और जन्ममरण की यातना से बचकर सूक्ष्म शरीर में निवास करते ही दिव्य जीवन जी सकने का लाभ मिलता है । यह लाभ ऐसे नहीं हैं जिन्हें सामान्य या तुच्छ कहा जा सके । यह विभूतियाँ ऐसी नगण्य नहीं हैं कि उनकी उपेक्षा करके धन, वैभव की विडम्बना एकत्रित करने के लिए हेय जीवन अपनाया जाय ।

वैभव दूसरों की आँख में चकाचौंध उत्पन्न कर सकता है । उन्हें बड़प्पन के भ्रम से भ्रमित कर सकता है पर वास्तविकता से परिचित आत्मा तो निरन्तर त्रास ही सहती रहती है । अपने द्वारा किये गये अनर्थों और उनके सुनिश्चित दुःखदायी प्रतिफलों का अनुमान लगाकर निरन्तर बेचैन रहता है , बाहर का ठाट बाट और भीतर का खोखलापन जिन्हें अच्छा लगता है, उन्हें नासमझ या अदूरदर्शी ही कहना चाहिए ।

जीवन की दो दिशाएँ हैं । एक काली, दूसरी, सफेद । काली दिशा को रात्रि की अंध–तमिस्रा कह सकते हैं जिसमें बहुत ऊँचाई पर टके हुए तारे ललचाते रहते किन्तु साथ ही हर क्षेत्र में निशाचरों का बोलबाला रहता है । नीरस निस्तब्धता छायी रहती है और दुःस्वप्नों का सिलसिला चलता रहता है ।

श्वेत दिशा वह है जो प्रगति के अरुणोदय से आरंभ होकर दिन भर चलती रहती है और सृजन पुरुषार्थ एवं सौन्दर्य का माहौल बनाती है । वही वरण करने योग्य है । यह बुद्धि हमारी विकसित हो, इसी दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए । *

सन् १७५७ की बात है अँग्रेज बंगाल पर अपना कब्जा करने का प्रयत्न कर रहे थे । किन्तु नवाब सिराजुद्दौला की नीतिमयी वीरता से उनकी दाल न गलती थी । बार–बार मुँह की खाने पर अँग्रेजों ने कूटनीति से काम लिया । उन्होंने सिराजुद्दौला के सेनापति मीरजाफर पर डोरे डालने शुरू किये । उन्हें पता लग गया कि मीरजाफर एक कुशल सेनापति होते हुए भी बड़ा लालची और कमजोर आदमी है । अंग्रेजों ने उसका लाभ उठाया और उसे बंगाल का नवाब बना देने का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया । मीरजाफर नवाबी का स्वप्न देखता हुआ बड़ा खुश रहने लगा ।

इधर अँग्रेजों ने नई तैयारी करके बंगाल पर फिर आक्रमण किया । सिराजुद्दौला ने सेनापति मीरजाफर को मोर्चे पर भेजा । नवाब के सिपाही बड़ी वीरता से लड़े किन्तु गद्दार मीरजाफर ने उन्हें हतोत्साहित करके अस्त–व्यस्त कर दिया । एक विश्वासघाती के कारण अँग्रेजों की जीत हो गई जिसके फलस्वरूप बंगाल पर उनका अधिकार हो गया ।

मीरजाफर ने जब अपना वचन पूरा करने को कहा तो अँग्रेज सेनापति ने घृणा से यह कहकर उसे तलवार से मौत के घाट उतार दिया "ऐ विश्वासघाती कुत्ते ! तू बंगाल का सुलतान होने का स्वप्न देख रहा है । तेरे जैसे गद्दार को दुनियां में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है । जब तू अपने मालिक और मुल्क का न हुआ, तो हमारा ही क्या होगा ?"

इन विडम्बनाओं में अपने को बरबाद न करें

परमात्मा प्राणि मात्र का सृजेता है । सभी जीव-जन्तु उसी की संतानें हैं । न्यायनिष्ठ भावनाशील पिता को अपनी सभी संतानों पर समान प्यार होता है । सभी को समान सुविधाएँ देना उसका नैतिक कर्तव्य बन पड़ता है । इसी रीति-नीति का निर्वाह जब सामान्यजन करते देखे जाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि परमात्मा इस न्यायनिष्ठा में किसी प्रकार की कमी रहने देगा, किसी के साथ पक्षपात करेगा और किसी को उसके अधिकारों से वंचित करेगा । ऐसा करने पर तो उसके समदर्शी, न्यायकारी और नीतिनिष्ठ होने की मान्यता पर ही प्रश्न चिन्ह लगेगा । ऐसी आशंका नहीं ही करनी चाहिए । सृजेता की न्यायनिष्ठा में अन्तर पड़ने की बात कहीं सोची ही नहीं जानी चाहिए ।

फिर मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में असाधारण वर्चस्व कैसे मिला ? उसे असाधारण संरचना वाला शरीर क्यों कर मिला ? इतनी सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धि वाली मानस सम्पदाओं की उपलब्धि किस आधार पर हुई ? अनेकानेक वैज्ञानिक अनुदानों से भरी-पूरी साधन सम्पन्नता कैसे प्राप्त हुई ? इतना संवेदनशील अन्तःकरण कैसे मिला ? ज्ञान, कर्म और भक्ति के साथ जुड़ी हुई उच्चस्तरीय अभिव्यंजनाओं के प्रकटीकरण का सुयोग किस प्रकार हस्तगत हुआ ? यह मनुष्य का मात्र निजी उपार्जन नहीं है । यदि होता तो अन्य प्राणी भी उतनी प्रगति करने, उतने ही साधन सँजोने में समर्थ रहे होते । यहाँ सहज असमंजस उत्पन्न होता है और उसका सही समाधान खोजा ही जाना चाहिए अन्यथा स्रष्टा और सृष्टि की वर्तमान स्थिति को समझने में ऐसी उलझन उत्पन्न होगी, जिसका कोई समाधान ही न निकल सके । यह असमंजस तो नास्तिकता का ही पक्षधर बनेगा और नियामक के सुव्यवस्थित नियन्त्रण पर से विश्वास उठ जाना अराजकता का, उद्दंड उच्छृंखलता का निमित्त कारण बनेगा । आदर्शवादी अनुशासन की मान्यता को बनाये रहना कठिन पड़ जायेगा ।

स्रष्टा ने मनुष्य को अपना ज्येष्ठ राजकुमार बनाया और उसे यह दायित्व सौंपा कि सृष्टि को सुव्यवस्थित, समुन्नत, सुसंस्कृत बनाये रहने में उसका हाथ बँटाये, सौंपे गये उत्तरदायित्व को ठीक तरह निभा सकने के लिए जिन साधनों की अवश्यकता थी, उनके बिना तो कुछ करते-धरते न बन पड़ता । सरकार उच्च अधिकारियों को अधिकार भी देती है और आवश्यक साधन, उपकरणों की भी व्यवस्था करती है । यदि न करे तो उनके लिए सौंपे उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकना ही संभव न हो सकेगा ? पुलिस को हथियार मिलते हैं, पर वे उन्हें नहीं मिलते जो पुलिस में नहीं हैं । उच्च अधिकारियों को जीप, टेलीफोन, दफ्तर, स्टाफ आदि मिलते हैं । इसके बिना वे अपनी बड़ी जिम्मेदारियों का निर्वाह कर नहीं सकते । आयुधों के विशाल भण्डारों की चाबी किन्हीं उच्च अफसरों के पास रहती है । सेनापति के अधिकार में सुसज्जित सेना रहती है । खजाने के बड़े अधिकारी उपलब्ध सौंपी गई धन राशि की सुरक्षा करते हैं । इसके अतिरिक्त जिसे जो मिला है वह उसे निर्धारित प्रयोजन के लिए ही प्रयुक्त करता है । निजी काम में उन साधनों के लगाने की छूट नहीं रहती । यदि खजाने और सरकारी कोष को अपने निजी काम में खर्च कर डालें तो उसे हड़पा हुआ धन लौटाने के लिए बाधित ही नहीं किया जायगा , वरन् जेल जाने और नौकरी से हाथ धोने के लिए भी बाधित होना पड़ेगा ।

मनुष्य को भी अन्य प्राणियों की तरह शरीर की सामयिक आवश्यकताएँ पूरी करते रहने भर की छूट है । वेतन हर महीने मिलता है । ऐसा नहीं होता कि जिन्दगी भर में मिलने वाली राशि, भोजन, आवास आदि का सारा हिसाब आरंभ में ही चुकता कर दिया जाय । जितनी आवश्यकता-उतनी राशि मिलने का ही सिद्धान्त अपनाया जाता रहा है । मनुष्य के पास भी उतना ही संग्रह रहना चाहिए जो उसकी सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति भर के लिए आवश्यक है । अनावश्यक संग्रह करने के लिए अत्यधिक वेतन किसी को भी नहीं मिलता । मात्र इतनी ही सुविधा रहती है कि अपने वेतन में से कुछ बचाकर किसी इच्छित व्यक्ति को उसे दिया जा सके या इच्छित कार्य में लगाया जा सके ।

लौकिक और पारलौकिक, बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही दृष्टियों से लाभदायक मार्ग यह है कि उत्कृष्ट आदर्शवादिता की रीति-नीति अपनायी जाय । वर्जनाओं पर अंकुश रखा जाय । वासना, तृष्णा की संकीर्ण स्वार्थपरता को उफनने न दिया जाय । सर्व साधारण

को जितने साधनों में निर्वाह करना पड़ता है । उतने का ही उपयोग करके संतुष्ट रहा जाय । महत्वाकांक्षाओं की आग ऐसी है जिसमें जितने-जितने साधन मिलते जायँ, वह उतनी ही अधिक तीव्र होती जाती है । साधनाओं की विपुलता वाले भी चैन से कहाँ बैठ पाते हैं ?, जो मिलता है वह कम प्रतीत होता है । इससे बहुत अधिक पाने की उत्कंठा कुछ हस्तगत होने के साथ-साथ ही भड़कती चली जाती है । ऐसा कदाचित ही कभी कहीं हुआ हो कि आज जो चाहा जा रहा है वह उपलब्ध हो जाय तो उतने भर से ही संतोष करते बन पड़े । आवश्यकताएँ सीमित हैं, उन्हें तो हर कोई थोड़े प्रयत्नों से पूरी कर सकता है । उसके लिए थोड़े साधन भी पर्याप्त हो सकते हैं, पर तृष्णाएँ तो असीम हैं । महत्वाकांक्षाओं का कोई अन्त नहीं । वे हर कदम पर अधिक तीव्र, उद्धत होती चली जाती हैं, तब अतृप्ति और भी बढ़ती चली जाती है । सोने की लंका बनाकर भी रावण को संतोष की सांस लेने का अवसर कहाँ मिला था ? सिकन्दर, चंगेज खां आदि जीवन भर आक्रमण करते और दौलत बटोरते रहे, पर वे मरते दिन तक संतोष की सांस न ले सके, फिर सामान्य व्यक्ति का तो कहना ही क्या ?

एक कुम्हार ने गधे को जल्दी चलाने के लिए एक चालाकी बरती । उसने उसकी पीठ पर तो वजन लादा, पर सिर के ऊपर एक लकड़ी काट कर एक हरियाली का गुच्छा लटका दिया । गधे को वह निकट ही दीखती इसलिए उसको लपक लेने के लिए तेजी से आगे बढ़ता । उतनी देर में लकड़ी पर टंगी हुई हरियाली और अधिक आगे निकल जाती । गधे को इस प्रलोभन में लगातार भागते रहना पड़ता, पर हाथ कुछ भी न लगता इसी प्रकार के विभ्रम, व्यामोह में फँसे हुए लोग अधिकाधिक साधन और वैभव बटोरने की ललक में दिवा स्वप्न देखते और कल्पना-जल्पना के महल खड़े करते रहते हैं, पर जब निष्कर्ष पर दृष्टि दौड़ाई जाती है, तो निराशा, असफलता, खीज और थकान के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न पड़ता । जो मिला उसमें से उतना ही उपयोग बन पड़ा जितनी कि भोग सकने की शारीरिक सीमा है । अधिक धनवान होने पर भी न कोई दूनी रोटियाँ खा सकता है और न दूने आकार के कपड़े पहन पाता है । जो कुछ अनावश्यक संग्रह किया गया था वह इसी धरती पर जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह जाता है । सम्बन्धी , कुटुम्बी, मित्र, पड़ोसी, ठग, डॉक्टर आदि उस बचत को मिल बाँट कर खा जाते हैं ।

सीमित साधन ही अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा कर लेते हैं और उतने भर से संतुष्ट प्रसन्न रहने का अवसर मिल जाता है । अति की दरिद्रता की तरह ही अति की समृद्धि भी अगणित संकटों का कारण बनती है । असन्तुष्ट रहने के अतिरिक्त अनुचित अनाचार द्वारा अल्प श्रम में बहुत पाने का कुचक्र रचना पड़ता है । उस मार्ग पर चलते हुए पग-पग पर कुकर्म करने और उद्विग्न रहने की स्थिति विकट से विकटतम होती जाती है । दुर्व्यसनी की आदतें कुसंग के सहारे स्वभाव में उतरती और अपना अधिकार जमा लेती हैं । सम्पर्क में आने वालों की ईर्षा भड़कती है । वे अपहरण करने और नीचा दिखाने के कुचक्र रचते रहते हैं । शारीरिक, मानसिक बीमारियों के दौर इन परिस्थितियों में आये दिन बढ़ते रहते हैं । आशंका, भय और आक्रमणों से बचाव की चिन्ता ही, सन्तानों की सुख शान्ति के भारी व्यवधान खड़े करती रहती है । सगे सम्बन्धियों तक से भी खिंचाव बढ़ता है । परस्पर के स्वार्थ टकराते हैं तो यह आशा निराशा में बदल जाती है कि सम्पन्नता से अपना और कुटुम्बियों का भला किया जा सकता है ।-उत्तराधिकारी आलसी, प्रमादी, व्यसनी और प्रतिभा रहित बनते जाते हैं । इस स्थिति में पले हुए लोग ऐसे दुर्गुणों के शिकार बनते हैं जिनके कारण विकास की संभावनाएँ धूमिल ही होती चली जाती हैं , देखा गया है कि तथाकथित धनाध्यक्षों की चमक-दमक बाहर वाले को ही प्रभावित करती है, किन्तु स्वयं को हेय बनाती चली जाती है , ईर्षालु उस पर उचित-अनुचित लांछन लगाते ही रहते हैं । उज्ज्वल छवि बिगाड़ने में कुछ उठा नहीं रखते । इस स्थिति में फँसना, फँसने के मनोरथ गढ़ना किसी भी प्रकार समझदारी नहीं कही जा सकती ।

आमतौर से आम आदमी इसी विग्रह को अपनाये हुए व्यस्त संत्रस्त रहते देखा जाता है । बढ़ाने और बढ़े को सँभालने के प्रयास में समूची शक्ति चुकती रहती है । समय, श्रम, प्रभाव परिचय, कौशल की एक-एक बूँद इसी निमित्त खप जाती है । ऐसी दशा में ऐसा कुछ बचता ही नहीं, जिसे आत्म कल्याण और लोक कल्याण के पुण्य परमार्थ में लगाया जा सके । ऐसे व्यक्ति सदा साधनों की दृष्टि से अपने को अभावग्रस्त और समय की दृष्टि से व्यस्त अनुभव करते रहते हैं । उन्हें दूसरों की सहायता की आवश्यकता प्रतीत होती है जो सीधी तरह न मिल पाने पर अनीतिपूर्वक छीननी पड़ती है और अपयश से लेकर सामाजिक राजनीतिक दंड भुगतने के लिए बाधित होना पड़ता है ।

सम्पन्नता की एक सहेली विलासिता भी है । बढ़ी हुई दौलत का खर्च विलास के अतिरिक्त और किसी मार्ग में खर्चने की बात सूझती ही नहीं । विलास प्रकारान्तर से कामुकता भड़काने का ही निमित्त कारण

बनता है। उस मार्ग पर कदम बढ़ते ही अवांछनीय प्रयत्न चल पड़ते हैं। उनके उचित पालन पोषण में अधिकाधिक खर्च बढ़ता जाता है। साधन सम्पन्न परिवारों में अपेक्षाकृत अधिक मनो मालिन्य उभरता है। मुफ्त का माल पाने की ललक और भी अधिक तीव्र होती है। विलास और अहंकार की पूर्ति के लिए साधन भी अत्याधिक चाहिए। उच्छृंखलता की छूट भी ऐसे ही परिवारों में अधिक उग्र होती है। इस सबका समन्वय विग्रह, विद्रोह के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। जहाँ श्रम, उपार्जन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, वहाँ खाली समय और खाली दिमाग में उद्दण्डताएँ ही सूझती हैं।

यही कारण है कि समझदार लोग उत्तराधिकार में अपने परिजनों के लिए मात्र सद्गुणों की सम्पदा ही छोड़ते हैं। विपुल सम्पदा छोड़ मरने का ताना–बाना नहीं बुनते। उसमें अपनी जीवन सम्पदा की बरबादी तो प्रत्यक्ष ही है साथ ही उनके परिजनों सम्बन्धियों का भी सब प्रकार अहित ही है, जिन्हें अनावश्यक राशि मुफ्तखोरी की तरह हाथ लगती है देखा गया है कि संतान न होने पर जो किसी दूसरे के बच्चे को अपना घोषित करने के लिए "गोद रखने" जैसा मन बहलाव करते हैं, उन्हें उस तथाकथित संतान से प्रताड़ना ही अधिक सहनी पड़ती है। जब सगे अभिभावकों के प्रति आज किसी के मन में कृतज्ञता के, सेवा साधना के भाव नहीं पाये जाते तो इस नकली संतान से उस प्रकार की आशाएँ बाँधना तो और भी अधिक उपहासास्पद है। बुढ़ापे में सेवा लेने और पिण्डदान पाकर उद्धार कराने की बात सोचना तो और भी अधिक विडम्बना वाली है। बेटी–बेटे का अन्तर बरतने की संकीर्णता तो और भी अधिक हेय है। बुढ़ापे में सेवा लेने की बात किसी को सोचनी पड़े तो उस सम्बन्ध में भी बेटों की तुलना में बेटी से तो भी कुछ आशा की जा सकती है। समय बदल रहा है जिसमें बेटी–बेटे का अन्तर अनायास ही समाप्त हो जायेगा। ऐसी दशा में विपुल सम्पदा कमाने, लम्बी चौड़ी महत्वाकांक्षा संजोकर उनके उपार्जन का लाभ परिवार वालों के लिए छोड़ जाना हर दृष्टि से अवांछनीय है।

परिवार के लिए मात्र सभ्य आचरण और सुसंस्कारी चिन्तन की सम्पदा ही छोड़ी जा सकती है। अपनों को प्रामाणिक, प्रखर प्रतिभावान बनाने पर ध्यान केन्द्रित करके सच्चे अर्थों में उनका हित साधन करना चाहिए। बुद्धिमान अभिभावक अपनी संतान को श्रमशीलता, शिष्टता, सुव्यवस्था, मितव्ययता, उदार सहकारिता रूपी पंचशील की शिक्षा देते हैं। उत्कृष्ट आदर्शवादिता अपनाने की प्रेरणा देते और अभ्यास कराते हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखते हैं कि उत्तराधिकार में हराम का पैसा न मिले, जिसके कारण उनका व्यक्तित्व और भविष्य एक प्रकार से कुंठित होता चला जाय।

किसी विशेष विषय में विद्वान समझे जाने वाले भी व्यक्तिगत जीवन में ऐसे अनगढ़ पाये गये हैं जिन्हें पूर्ण पागल नहीं तो अर्ध विक्षिप्त तो कहा ही जा सकता है।

साहित्यकार बेकन वर्षा के समय खुली गाड़ी पर चढ़कर इसलिए निकलता था कि पेड़ पौधों की तरह उसका शरीर भी हरा भरा हो जाय। एक फ्रांसीसी विद्वान बिजली के खम्भे छूते हुए और गिनते हुए चलता था। गिनती में कभी भूल हो जाती तो लौटकर सड़क के मोड़ से फिर उस गिनती को आरम्भ करता।

बायरन को डरावने सपने आते थे। वह उनका सामना करने के लिए दो भरी हुई पिस्तौलें अगल बगल रखकर सोता था। फ्रांसीसी लेखक ड्यूमा नीले रंग के कागजों पर उपन्यास पीले पर कविता लिखता था। ड्यूमा कमरे के बायें कोने में बैठता था। वाल्टर स्काट अपनी एक कविता की बड़ी प्रशंसा करता था और इसे बायरन की बनाई हुई बताया करता था।

ओलिवर होम्स प्रतिभावानों को अर्ध-विक्षिप्त बताया करते थे। बाइबिल में एक प्रसंग आता है जिसमें कहा गया है कि अधिक पढ़ने से तू पागल हो गया है।

परिवार को सुसम्पन्न छोड़ मरने, शरीर को अधिकाधिक विलासी अहंकारी प्रदर्शित करने, महत्वाकांक्षाओं की आग में निरन्तर जलते रहने की मूर्खताएँ ऐसी हैं, जो वे लोग किसी भी प्रकार अपनाने के लिए तत्पर न हों जिन्हें जीवन सम्पदा का सदुपयोग करना और इस महान उपलब्धि को सार्थक बनाते हुए स्वयं को धन्य बनाना है। *

बहिरंग का आनन्द अंतरंग पर निर्भर

अभावग्रस्तों की तुलना में यदि अपनी उपलब्धियों को आँका जाय तो प्रतीत होगा कि अनेकों की तुलना में हम सुसम्पन्न हैं । यदि अपकारों को भुला दिया जाय और उपकार को हीं स्मरण किया जाय तो प्रतीत होगा कि जो हस्तगत होता रहा है वह भी कम नहीं है । असंख्य प्राणियों की तुलना में हर दृष्टि से वरिष्ठ काया अपने को मिली है यह कम सौभाग्य की बात नहीं है । अपना चिन्तन और चरित्र मानवी गरिमा के अनुरूप है यह कम संतोष की बात नहीं है । फिर समाज के ईश्वर के जो उपकार अपने ऊपर हैं उन्हें एक-एक करके गिना जाय तो प्रतीत होगा कि उपलब्धि सौभाग्य सुयोग भी कम मूल्यवान नहीं है । अपनी असफलताओं की गणना छोड़कर यदि प्राप्त हुई सफलताओं पर दृष्टि डाली जाय तो प्रतीत होगा कि प्रगति की दिशा में अपने कदम कम नहीं उठे हैं ।

अपने से बाहर दृष्टि दौड़ाई जाय और ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस संसार में कई पराक्रमी, पुरुषार्थी विचारशील, दूरदर्शी, परोपकारी मनुष्य अभी भी मौजूद हैं तथा भूतकाल में भी हो चुके हैं । भूतकाल के महामानवों के कर्तृत्व ऐसे हैं जिनके पठन, श्रवण या मनन, चिन्तन करने से ऊँचा उठने, आगे बढ़ने की सतत् प्रेरणा मिलती है ।

प्रकृति का अवलोकन जिस ओर से भी किया जाय उसकी शोभा सुषमा देखते ही बनती है । ऊपर आकाश को देखा जाय तो दिन में सूरज और रात्रि में चन्द्र तारों से झिलमिलाता गगन कितना सुन्दर और शोभायमान लगता है । बदलती ऋतुएँ अपने साथ कैसी विशिष्टतायें लाती हैं और कैसा अदभुत प्रभाव छोड़ती हैं । वर्षा के बादल और वसन्त के खिलते सुमन कैसी गुदगुदी उत्पन्न करते हैं । चित्र विचित्र पक्षियों का आकार प्रकार कैसे विचित्र रंगों में रंगा हुआ है ? चलते फिरते, बोलते डोलते खिलौनों को देखकर बालक प्रसन्नता से उछलने लगते हैं तो फिर अपने लिए यह पेड़ पौधों वाली पशु पक्षियों वाली दुनिया सहज ही कितनी आनन्द दायक होनी चाहिए ? धरती पर बिछी हरी घास का मखमली फर्श, लहलहाती हुई हरीतिमा इतनी सुन्दर है कि मनुष्यकृत विनोद साधन उसके सामने तुच्छ लगते हैं । पर्वतों की ऊँचाई जलाशयों की गहराई कितनी आश्चर्यजनक है । हाट बाजार से लेकर सघन वन्य प्रदेशों की शोभा सुषमा अपनी अपनी विविधता से भरी होती है । इन्हें यदि सौन्दर्य दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि स्वर्ग की शोभा का जैसा वर्णन किया जाता है, यहाँ उसकी तुलना में कुछ भी कमी नहीं है । अपने आसपास इर्दगिर्द जो हलचलें होती रहती हैं उसमें स्वर्ग की विभूतियाँ भी हैं और दुष्कृत्यों का परिणाम हाथों-हाथ मिलने वाली नारकीय यातनायें भी । इस सबमें सीखने योग्य बहुत कुछ है ।

ज्ञान का समुद्र इस संसार में इतना भरा पड़ा हैं कि उसे संग्रह करते रहा जाय तो उस दिव्य सम्पदा का संचय अनन्त मात्रा में हो सकता है । वह सरस भी इतना है कि उससे आजीवन तृप्ति ही न हो सके ।

> *डॉ. राजेन्द्र प्रसाद उन दिनों राष्ट्रपति थे । प्रवास में वे बिहार गये । जूते पुराने हो चुके थे । नये खरीदने की आवश्यकता पड़ी । इसके लिए उनने अपना आदमी भेजा । वह महँगे दाम का जूता खरीद लाया ।*
>
> *राजेन्द्र बाबू ने उसे वापस लौटाया और सस्ते दाम का जूता बदलवा कर मँगाया ।*

वस्तुतः कुरूपता और अप्रसन्नता अपने दृष्टिकोण में ही रहती है । उसे बदला जा सके तो सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है । यहाँ तक कि मृत्यु का दिन भी नये देश की यात्रा जैसा, नये वस्त्र बदलने जैसा सुहावना प्रतीत हो सकता है । मरण में जो विनाश देखते हैं, उन्हीं के लिए वह दुखद है अन्यथा नया शरीर लेकर छोड़े हुए अधूरे कामों को पूरा करने के लिए उसे एक सुयोग ही समझा जाना चाहिए । यह हमारे अपने दृष्टिकोण पर हीं निर्भर है कि हम बहिरंग जीवन के घटनाक्रमों को किस दृष्टि से देखते हैं । हम अपना नजरिया बदल लें तो सब कुछ अनुकूल नजर आने लगेगा । यही जीवन जीने का सही तरीका भी है ।

दैवी अनुकम्पा एवं संकल्पशक्ति का चुम्बकत्व

अनगढ़ और पुरुषार्थी दो स्तर के लोग आम जनता के बीच पाये जाते हैं। उन्हीं को गरीब-अमीर, सफल-असफल भी कहते हैं, किन्तु इन सबसे ऊँचा एक और स्तर है, जिसे देव मानव कहकर सराहा जाता है। प्रतिभाशाली उपयुक्त सफलताएँ पाते हैं, भले ही उसका दुरुपयोग करके अपयश के भाजन ही क्यों न बनें ? किन्तु जिनने अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुनियोजित, सुसंस्कृत बना लिया है, उनके लिए आत्मिक संतोष, लोक सम्मान और दैवी अनुग्रह तीनों ही सुरक्षित रहते और दिन-दिन समुन्नत होते जाते हैं। वस्तुतः व्यक्तित्व का परिष्कार और उदात्तीकरण ही वह योगाभ्यास है, जिसके माहात्म्य को लोक और परलोक की अभीष्ट सफलताएँ देने वाला बताया गया है। प्रखर प्रतिभा का उद्गम स्रोत ईश्वर है, जिसे दूसरे शब्दों में सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय भी कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन में वह गरिमामयी आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के रूप में ही अवतरित होती है। पूजा-उपासना के समस्त कर्मकाण्डों का उद्देश्य इसी आन्तरिक वरिष्ठता का सम्पादन और अभिवर्धन करना है।

मशीनों में बिजली का प्रवाह कम मात्रा में पहुँचता है, तो उनकी चाल बहुत धीमी पड़ जाती है, पर जैसे-जैसे वह विद्युत प्रवाह बढ़ता है, वैसे ही-वैसे उन सब में तेजी, गति, शक्ति बढ़ती जाती है। चेतना का काम चलाऊ अंश तो प्राणि मात्र में रहता है, जिससे वह किसी प्रकार अपनी जीवनचर्या चलाता रह सके। यह जन्मजात है, किन्तु जब कभी इसकी अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है, तो यह कार्य योग और तपपरक साधना करती है। इन दोनों का तात्पर्य प्रकारान्तर से प्रतिभा और सेवा साधना में सरसता अनुभव होने की प्रकृति ही समझी जा सकती है।

योगदर्शन में अष्टांग साधना में सर्वप्रथम यम-नियम की गणना की गई है। यह अन्तरंग और बहिरंग सुव्यवस्था के ही दो रूप हैं। जिसने इस दिशा में जितनी प्रगति की,समझना चाहिए कि उसे उतनी ही आत्मिक प्रगति हस्तगत हुई और उसकी क्षमता उस स्तर की निखरी, जिसका वर्णन महामानवों में पाई जाने वाली ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में किया जाता है। उपासनात्मक समस्त कर्मकाण्डों की संरचना इसी एक प्रयोजन के लिए हुई है, कि व्यक्ति की पशु-प्रवृत्तियों के घटने और दैवी सम्पदाओं के बढ़ने का सिलसिला क्रमबद्ध रूप से चलता रहे। यदि उद्देश्य का विस्मरण कर दिया जाय और मात्र पूजा परक क्रिया-कृत्यों को ही सब कुछ मान लिया जाय, तो यह चिन्ह-पूजा का निर्जीव उपक्रम ही माना जायगा और उतने भर से बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियों की आशा करने वालों को निराश ही रहना पड़ेगा।

समर्थ पक्षियों के नेतृत्व में अनेकों छोटी चिड़ियाँ उड़ान भरती हैं। बलिष्ठ मृग के परिवार में आश्रय पाने के लिए उसी जाति के अनेक प्राणी सम्मिलित होते जाते हैं। चींटियाँ कतार बनाकर चलती हैं। बलिष्ठ आत्मबल के होने पर दैवी शक्तियों का अवतरण आरंभ हो जाता है और साधक क्रमशः अधिक सिद्ध स्तर का बनता जाता है। यही है वह उपलब्धि, जिसके सहारे महान प्रयोजन सधते और ऐसे गौरवास्पद कार्य बन पड़ते हैं, जिन्हें सामान्य स्तर के लोग प्रायः असंभव ही मानते रहते हैं।

बड़ी उपलब्धियों के लिए प्रायः दो मोर्चे सँभालने पड़ते हैं-एक यह कि अपनी निजी दुर्बलताओं को घटाना-मिटाना पड़ता है। उनके रहते मनुष्य में आधी चौथाई शक्ति ही शेष रह जाती है। अधिकांश तो निजी दुर्बलताओं के छिद्रों से होकर बह जाती है। जिनके लिए अपनी समस्यायों को सुलझाना ही कठिन पड़ता है, वह आपके क्षेत्र के बड़े कामों का सरंजाम किस प्रकार जुटा सकेंगे। भूखा व्यक्ति किसी भी मोर्चे पर जीत नहीं पाता। इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति स्वयं अपने लिए इतनी समस्याएँ खड़ी करता रहता है, जिनके सुलझाने में उपलब्ध योग्यता का अधिकांश भाग खपा देने पर भी यह निश्चय नहीं होता कि अन्य महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करने के लिए कुछ सामर्थ्य बचेगी, या नहीं।

बच्चों को लोरी गा कर सुला दिया जाता है।

झूले पर हिलते रहने वाले बच्चे भी जल्दी सो जाते हैं। रोने वाले बच्चे को अफीम चटा कर खुमारी में डाल दिया जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति को भी कुसंग में, दुर्व्यसन में आलस्य-प्रमाद का आदी बना कर ऐसा कुछ बना दिया जाता है, मानों वह अर्धमृत या अर्धविक्षिप्त अनगढ़ स्थिति में रह रहा हो। ऐसे व्यक्ति पग-पग पर भूलें करते और कुमार्ग पर चलते देखे जाते हैं। उपलब्धियों का आमतौर से ऐसे ही लोग दुरुपयोग करते और घाटा उठाते हैं, किन्तु जिनने इस अनौचित्य की हानियों को समझ लिया है, उनके लिए आत्मानुशासन कठिन नहीं रहता, वरन् उसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को उससे कहीं अधिक हलकी अनुभव करते हैं, जो कुमार्ग पर चलने वाले को पग-पग पर उठानी पड़ती है। परमार्थ कार्यों में समय और साधनों का खर्च तो होता है, पर वह उतने दुष्परिणाम उत्पन्न नहीं करता, जितने कि संकीर्ण स्वार्थपरता अपना कर तत्काल दीखने वाले लाभों के व्यामोह में निरन्तर पतन और पराभव ही हाथ लगता है।

हर महत्वपूर्ण कार्य के लिए प्रतिभाशाली व्यक्तित्व चाहिए, अन्यथा असावधान एवं अनगढ़ जितना कुछ कर पाते हैं, उससे अधिक हानि करते रहते हैं। ऐसों की न कहीं आवश्यकता होती है, न इज्जत और न उपयोगिता। ऐसी दशा में उन्हें जहाँ-तहाँ ठोकरें ही खाते देखा जाता है। इसके विपरीत उन जागरूक लोगों का पुरुषार्थ है, जो पूरे मनोयोग के साथ काम को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाते हैं और उसमें समूची शक्ति लगाकर लक्ष्य तक पहुँच कर दिखाते हैं। बड़प्पन ऐसों के हिस्से में ही आता है। बड़े काम सम्पन्न करते ऐसे ही लोग देखे जाते हैं, बड़ाई उन्हीं के हिस्से में आती है। साधन तो सहायक भर होते हैं। वस्तुतः मनुष्य की क्षमता और दक्षता उसके गुण कर्म, स्वभाव के निखार पर निर्भर रहती है।

अध्यात्म जादूगरी नहीं है और न कहीं आसमान से बरसने वाले वरदान-अनुदान। देवी-देवताओं का भी यह धंधा नहीं है कि चापलूसी करने वालों को निहाल करते रहें और जो इनके लिए ध्यान न दे सकें, उन्हें उपेक्षित रखें या आक्रोश का भाजन बनायें। वस्तुतः देवत्व आत्म जागरण की एक स्थिति विशेष है, जिसमें अपने ही प्रसुप्त वर्चस्व को प्रयत्नपूर्वक काम में लाया जाता है और सत्प्रयासों का अधिकाधिक लाभ उठाया जाता है।

कहते हैं कि भगवान शेष-शैय्या पर सोते रहते हैं। कुसंस्कारी लोगों के भगवान उन बचकानों की बेहूदी धमा-चौकड़ी से तंग आकर आँखे मूँदकर इसी प्रकार जान बचाते हैं, पर जो मनस्वी उनकी सहायता से कठिनाइयों में त्राण पाना चाहते हैं, उनके लिए द्रौपदी या गज की तरह उसकी कष्ट निवारण शक्ति भी दौड़ी आती है। जिन्हें वर्चस्व प्राप्त करना होता है, उन्हें सुदामा, नरसी, विभीषण, सुग्रीव की तरह अयाचित वैभव भी प्रचुर परिमाण में हस्तगत होता है।

इच्छा शक्ति संसार की सबसे बड़ी सामर्थ्य है। साहस भरे संकल्प बल से बढ़ कर इस संसार में और कोई बलिष्ठ नहीं। इन्हीं को अर्जित करते जाना जीवन का वास्तविक लक्ष्य है, क्योंकि स्वर्ग-मुक्ति जैसे आध्यात्मिक और ऋद्धि-सिद्धि जैसे भौतिक लाभ इसी आधार पर अब तक उपलब्ध किये जाते रहे हैं व आगे भी यही राज मार्ग इन उपलब्धियों के लिए खुला पड़ा है।

*

एक सरोवर में हंस भी रहते थे और कछुआ भी। एक बार वर्षा नहीं हुई। सरोवर सूख गया। हंस उड़ कर अन्यत्र जाने लगे। कछुऐ ने कहा मित्र इतने दिन साथ रहने की मित्रता निबाहो। जहाँ आप जाते हो वहाँ हमें भी ले चलो अन्यथा प्यासे मर जायेंगे।

हंसों को दया आई उनने साथ ले चलने का एक उपाय निकाला। दोनों ने अपनी चोचों में मजबूती से एक लकड़ी पकड़ ली कछुए से कहा लकड़ी को मुँह में दबाओ और नीचे लटक जाओ इस प्रकार हम तीनों दूसरे सरोवर में पहुँचेंगे।

साथ ही यह हिदायत दी कि कहीं मुँह न खोल देना। नहीं तो नीचे गिरोगे। तीनों उत्तर दिशा में उड़ चले।

रास्ते में एक गाँव पड़ा। तीन को उड़ता देखकर बच्चे हल्ला मचाने लगे देखो कछुआ उड़ रहा है। कछुआ मौन न रह सका वस्तुस्थिति बताने के लिए आतुर हो उठा। बोला मैंने तो लकड़ी भर पकड़ रखी है।

बात पूरी भी न कह पाया मुँह खुला और नीचे गिर कर चूर-चूर हो गया। अनावश्यक बातें करने वाले की यही दुर्गति होती है।

प्रसन्नता एक विभूति, एक वैभव

प्रसन्न रहना सभी चाहते हैं, पर उसमें से रह कोई विरला ही पाता है । कारण कि लोग समझते हैं कि वह किन्हीं सुविधा साधनों के साथ जुड़ी हुई है । वे न हों तो किस प्रकार प्रसन्न रहें ? जिन्हें अभाव और कठिनाइयाँ ही अपने इर्द गिर्द दीखती हैं उन्हें उदास या खिन्न उद्विग्न रहने के अतिरिक्त और कुछ बन भी क्या पड़ सकता है ?

प्रसन्नता एक ऐसी विभूति है जिसके सहारे मनुष्य खिले हुए फूल की तरह सुन्दर आकर्षक दीखता है । समीप आने वालों को भी अपने इस वैभव का लाभ वितरित कर देता है । हर किसी का दृष्टिकोण अपना-अपना है । उसी के अनुरूप जिसे जो पसन्द होता है चुन लेता है । खिन्नता, उदासी और प्रसन्नता तीनों ही ऐसी हैं जो भीतर से उफनती हैं । मात्र प्रतीत भर ही ऐसा होता है कि यह दूसरों के स्वभाव या व्यवहार की परिणति है । किन्तु इसमें आंशिक सचाई ही है । इसे समग्र वास्तविकता मानकर नहीं चलना चाहिए ।

इच्छित वस्तुएँ जिस मात्रा में, जिस स्तर की हम चाहते हैं, उस अनुपात में उनका मिल सकना संभव नहीं । कारण कि इच्छाओं की कोई सीमा नहीं । अभी जो वस्तु पर्याप्त प्रतीत होती है वह कुछ क्षण उपरान्त स्वल्प प्रतीत होने लगती है । अधिक मिलने पर और अधिक की चाह बढ़ती है । यही बात लोगों के व्यवहार संबंधी भी है । किसी के सहयोग या उपकार का पक्ष देखा जाय तो उतना ही पर्याप्त प्रतीत होता है । यदि किसी की उपेक्षा देखनी हो तो वह तनिकसी भी होने पर शत्रुता जैसी प्रतीत होती है और लगता है कि जैसा चाहा गया था वैसा नहीं हो रहा है ।

हर वस्तु सीमित मात्रा में ही मिल सकती है । इच्छा तो असीम और अनन्त है । उसको अब तक कोई भी पर्याप्त नहीं कह सका और न संतुष्ट ही हो सका । फिर अपनी इच्छित वस्तुएँ असीम मात्रा में मिलने लगें यह कैसे हो सकता है ? इसी प्रकार कोई सर्वथा अनुकूल होकर रहे यह भी असंभव है । हर व्यक्ति का अपना स्तर और अपना स्वभाव है । ऐसी दशा में यह कैसे जान पड़े कि उतनी मात्रा में उतनी वस्तुएँ हमें मिलने लगें जितनी कि चाही गई । सद्व्यहार की भी अपनी-अपनी परिभाषा है । किसी को थोड़ा सहयोग-उपकार भी असीम जान पड़ता है और किसी के लिए अतिशय सहकार भी तुच्छ प्रतीत होता है । कभी-कभी तो वह अवज्ञा, उपेक्षा एवं शत्रुता जैसा भी प्रतीत होता है । ऐसी दशा में मात्र बाहरी उपलब्धियों या परिस्थितियों के आधार पर ही कोई यह अनुभव नहीं कर सकता है कि प्रसन्नता के निमित्त जो कुछ जितना कुछ चाहा गया है वह उतनी ही मात्रा में उसी अनुपात में उपलब्ध हो सकेगा । प्रयत्न की कमी, परिस्थितियों की प्रतिकूलता एवं स्वभाव की भिन्नता से भी ऐसा हो सकता है । किन्तु यह भी संभव है कि काम चलाऊ स्थिति होने पर भी अपने को संतोष न मिले और सदा असंतोष एवं खिन्नता की ही मनःस्थिति बनी रहे ।

बहुत समय पूर्व जापान के एक जिले के जिलाधीश थे-चाईसेन । उनके हाथ में सरकार ने बहुत सत्ता दे रखी थी ।

एक व्यापारी अपना कुछ बड़ा काम सरकार से निकालना चाहता था । इसके लिए जिलाधीश का सहयोग अपेक्षित था । व्यापारी अशर्फियों की थैली लेकर पहुँचा और बोला-यह भेंट स्वीकार करें, मेरा काम कर दें । इस भेंट की बात कोई भी नहीं जान पायेगा ।

चाईसेन ने कहा यह कैसे हो सकता है कि कोई न जाने । धरती, आसमान, मेरी आत्मा, आपकी आत्मा और परमात्मा पाँच की जानकारी में जो बात आ गई, उस पाप का भेद तो खुल ही गया । कृपा कर अपनी अशर्फियाँ वापस ले जाइये, अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को झुठलाना मेरे लिए किसी भी प्रलोभन के बदले संभव न हो सकेगा ।

अप्रसन्नता की स्थिति में मानसिक विकास रुक जाता है । उदासी की स्थिति में समग्र चिन्तन बन नहीं पाता और उस अधूरेपन के कारण रास्ता भी सही

नहीं मिलता। अप्रसन्नता तो ऐसा मनः क्षेत्र बना देती है जिसकी उर्वरता और प्रखरता एक प्रकार से पलायन ही कर जाय और व्यक्ति समझदार सुयोग्य होते हुए भी मूर्ख जैसे आचरण करने लगे। उल्टा सोचे और उल्टा करे। ऐसी स्थिति में परिणाम का उलटा होना स्वाभाविक ही है।

शरीर पर मनःस्थिति का असाधारण प्रभाव पड़ता है। प्रसन्नता चेहरे पर प्रफुल्लता बनकर उभरती है। आखों में तेज रहता है और होंठों पर मुसकान। ऐसी दशा में कुरूप या वयोवृद्ध भी सुन्दर सलौना लगता है। प्रतीत होता है कि उसे अनेक सफलतायें मिली हैं। उनके लिए उसे समुचित क्षमतायें और परिस्थितियाँ प्राप्त हैं। अन्यथा ऐसा न होता तो यह उमंग उत्साह भरी मनःस्थिति कहाँ से उपलब्ध होती। सफलता एक प्रकार की सम्पन्नता है जिसमें असाधारण आकर्षण पाया जाता है। वह दर्शकों पर अपनी छाप छोड़ती है और अपनी और खींचती है।

शरीर पर प्रसन्नता का अनोखा असर पड़ता है। दुर्बलता की स्थिति में भी साहस और उत्साह बना रहता है और उतना काम करते बन पड़ता है जितना कि अच्छे भले आदमी कर सकते हैं। इसके विपरीत उदास या उद्विग्न शरीर निरोग होते हुए भी बीमारी जैसी स्थिति में जा पड़ता है। उसे हर समय थकान चढ़ी रहती है। निराशा छाई रहती है और छोटा काम भी पर्वत जैसा कठिन प्रतीत होता है।

यह लगता भर है कि रक्त मांस की बहुलता से मनुष्य अधिक पुरुषार्थ कर सकता है। बड़े काम करने वाले बलिष्ठ होते हैं पर वस्तुतः बात वैसी है नहीं। उदासी हर आयु में वृद्धावस्था में भी महँगी पड़ती है। उसके रहते क्रमबद्धता नहीं बन पड़ती और अस्तव्यस्त व्यक्ति चूक पर चूक करता जाता है। एक कदम में ठोकर लग जाने पर दूसरा उठाने की हिम्मत नहीं पड़ती।

कमल का फूल खिलता तो पानी के ऊपर है पर उसकी जड़ें नीचे जलाशय की तली में रहती हैं। प्रसन्नता भी एक फूल है जो दीखती भर चेहरे पर है पर वस्तुतः उसका मूलभूत कारण अन्तःकरण के अन्तराल में रहता है। आत्मविश्वास और आत्मपरिष्कार का सम्मिलित स्वरूप ही प्रसन्नता के रूप में खिलता और अपनी शोभा तथा सुगंध से सारे वातावरण को सुरुचिपूर्ण शोभायमान बनाता है। यह परिवर्तन प्रसन्नता का आधार बदल देने मात्र से हो सकता है।

कुरूपता, अभाव और खिन्नता को यदि हम देखें तो उसका विस्तार भी उतना ही दीख पड़ेगा जितना कि सुन्दरता, सम्पन्नता और सद्भावना का। दिन जितना बड़ा है रात भी उतनी ही। रात जितनी बड़ी है उतना ही दिन भी। दिन प्रधान मानकर चलें तो प्रकाश से वास्ता पड़ेगा और रात भर जागते रहें तो सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देगा। हम शुभ सोचें, शुभ करें और शुभ की संभावना को ही कल्पनाक्षेत्र में विचरण करने दें तो जो पक्ष चुना गया है वही हमारे हाथ आवेगा। रुपये के दो पहलू होते हैं दोनों और समान प्रकार की आकृतियाँ छपी होती हैं। उनमें से जिसे ऊपर रखें वही दीखता रहेगा। जीवन को, विश्व को, सम्पर्क क्षेत्र को जिस दृष्टि से देखें, वही सामने प्रस्तुत रहेगा। अच्छा हो, हम उज्ज्वल पक्ष से सम्पर्क साधें और सदा प्रसन्न रहें अपनी प्रसन्नता को सम्पर्क क्षेत्र पर बिखेरते हुए प्रमुदित रहें प्रमुदित करें और प्रमुदित वातावरण का सृजन करें। यही व्यावहारिक अध्यात्म है। ❋

महर्षि उद्दालक के गुरुकुल में प्रधानतया छात्रों की प्रतिभा निखारने का काम होता था। वे अपने छात्रों को बड़े उत्तरदायित्व सौंप कर बढ़चढ़ कर पराक्रम की शिक्षा दिया करते थे। पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ उनके शिक्षण के यह प्रधान उद्देश्य थे।

एक दिन आरुणि नामक शिष्य को उन्होंने सौ गौओं का एक झुण्ड दिया और समीपवर्ती वन प्रदेश में चराने के लिए आदेश दिया। साथ ही यह निर्देश भी दिया कि वह वापस तब लौटे जब गौओं की संख्या एक हजार हो जाय।

शिष्य आदेश पाकर गौओं समेत चला गया। एकाकी इतना बड़ा उत्तरदायित्व इतने लम्बे समय तक निबाहने में उसे कितने ही प्रकार के कौशल सीखने और अनुभव में लाने पड़े जब वह वापस लौटा तो उसके चेहरे में अनुभव जन्य तेज फूटा पड़ता था।

गुरु ने उसकी सफलता को मुक्त कंठ से सराहा। पुस्तकीय ज्ञान में जो कमी रह गई थी। उसे पूरा कराया। बाद में उसे कर्मक्षेत्र में उतारा। जीवन में उसने एक से एक बढ़ कर कार्य किये।

सज्जनता के साथ व्रतशीलता भी

परमात्मा की अनेक विभूतियाँ हैं। उन सबका समय-समय पर उपयुक्त उपयोग होता है जो समय के अनुरूप उपयोग की आवश्यकता समझते हैं वे समग्रता संचय करते हैं, किन्तु बालबुद्धि उन्हीं में रमती रहती है जो आकर्षक है जिनमें अनुकूलता, सम्पदा, सुन्दरता एवं प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है। मनुष्य का यह स्वभाव तो है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रवृत्ति का परिपोषण ही सदा उपयुक्त होता है।

बच्चों को खिलौने पसंद आते हैं। वे मिठाई के लिए ही अधिक आग्रह करते हैं, पर यदि अभिभावक उनकी इच्छा ही पूरी करते रहे तो इसमें वैसा हित साधन न होगा जैसा कि उपलब्ध करते या कराते समय प्रसन्नता के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यदि बड़ी संख्या में खिलौने मँगा कर दिये जायँ तो बच्चा उन्हीं में रम जायगा। पढ़ने दौड़ने आदि के अन्य उपयोगी कार्यों से मन हटा लेगा। संख्या में बहुत होने पर वे किसी का भी पूरा रस न ले सकेंगे और न उनकी साज सँभाल कर सकते हैं। लाये हुए खिलौने जल्दी-जल्दी खोते और टूटते-फूटते रहेंगे। इससे बच्चों की आदत बिगड़ेगी और अभिभावकों के पैसे की अवांछनीय बरबादी होगी। यही बात मिठाई के सम्बन्ध में भी है। अधिक मिठाई खाने से बच्चों के दाँत खराब हो जाते हैं। पेट में कीड़े पड़ते हैं, दस्त लग जाते हैं। चटोरेपन की आदत पड़ जाने पर बच्चे बिना उचित अनुचित का विचार किये जहाँ-तहाँ से जैसे तैसे मिठाई पाने का प्रयत्न करने लगते हैं। शाकभाजी, फल, दूध जैसी उपयोगी वस्तुओं की उपेक्षा होने लगती है। इसलिए जीवनक्रम में सभी उपयोगी विषयों का संतुलन बनाये रहना आवश्यक माना गया है। पढ़ना अच्छी बात है, पर यदि छात्र को मात्र पढ़ने का ही ध्यान रहे, वह खेलकूद से मुँह मोड़ ले अथवा खेलकूद में ही व्यस्त रहे और पढ़ाई पर ध्यान न दे तो वह एकांगी आदत लाभदायक नहीं हानिकारक ही सिद्ध होगी। संतुलन बनाये रहना, समग्रता को अपनाये रहना ही औचित्य की मर्यादा में आता है। उसी से हित साधन भी होता है।

मनुष्य आमतौर से सुख-साधनों की अभिवृद्धि ही चाहता है। उसी के लिए प्रयत्न करता है और भगवान से प्रार्थना भी उन्हीं के लिए करता है। मिलने पर प्रसन्न भी होता है। इतने पर भी वह एकांगी इच्छापूर्ति व्यक्तित्व में अपूर्णता ही बनाये रहता है और इसके रहते समय पड़ने पर व्यक्ति अपने आप को कठिनाइयों से घिरा हुआ अनुभव करता है। जीवन एकांगी नहीं है और न वह एक पक्षीय उपलब्धियों से संतुष्ट रह सकता है।

भरपेट भोजन मिलना बलवर्धन के लिए आवश्यक है, पर यदाकदा उपवास भी किया जाना चाहिए, ताकि पाचन तंत्र को विश्राम मिले और थकान दूर करने के उपरान्त नये शक्ति संचय के साथ शरीर अपना कार्य ठीक प्रकार करता रहे। जो सदा ठूँस-ठूँस कर खाते ही रहते हैं कभी निराहार रहने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते, वे अपनी पाचन क्षमता गँवा बैठते हैं और अन्ततः घाटे में ही रहते हैं।

विद्या पढ़ना अच्छी बात है, पर साथ ही व्यायाम में भी रुचि होनी चाहिए अन्यथा कोई व्यक्ति विद्वान भले ही बन जाय स्वास्थ्य की दृष्टि से दुर्बल ही रहेगा। बड़ी मेहनत का अवसर आने पर हाँफ जायगा और दूसरों का सहारा तकेगा। जीवनी शक्ति की न्यूनता के कारण आये दिन बीमार भी पड़ता रहेगा। उपचार का प्रभाव भी देर में पड़ेगा। यदि आरंभ से ही अध्ययन के साथ व्यायाम को भी जुड़ा रखा गया होता तो असमंजस की स्थिति सामने न आती।

अनुकूलताओं से सुविधा रहती है। उपलब्धियों से प्रसन्नता भी होती है। यह एकांगी लाभ है। इससे इतनी ही जानकारी रहती है कि सुविधाओं का उपयोग कैसे किया जाय? किन्तु दूसरा पक्ष अनजाना ही रह जाता है। कठिनाइयों का सामना कैसे किया जाय? उनसे बचा और निपटा कैसे जाय? इसका अनुभव अभ्यास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि प्रतिकूलताओं से पाला न पड़े। उनसे निपटने का भी एक विशेष कौशल है। इसके लिए साहस की आवश्यकता पड़ती है साथ ही सहने के लिए धैर्य और निपटने के लिए चातुर्य भरा पराक्रम भी चाहिए यह विशेष गुण अभ्यास के बिना नहीं आते। अभ्यास के

लिए अवसर चाहिए। यदि वह संयोगवश न आता हो तो उसे बुलाने के लिए स्वेच्छापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए।

कुन्ती ने भगवान से यही वरदान माँगा था कि वह दुखियों का दुःख बँटाने का अवसर सदा प्राप्त करती रहे जिससे उसे यह प्रतीत होता रहे कि दुखियों को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब वास्तविक अनुभूति होगी तभी सच्चे मन से उसके निवारण के लिए त्याग, सौजन्य और साहस दिखाया जा सकेगा। इन गुणों की अभिवृद्धि से ही चेतना का भावपक्ष विकसित होता है। इसी आधार पर आत्मिक प्रगति का वास्तविक अवसर मिलता है।

आत्मोत्कर्ष का एक विशिष्ट पहलू है–तपश्चर्या। तपश्चर्या कहते हैं कठिनाइयाँ सहने को। मनुष्य का स्वभाव सुविधाएँ संकलित करने का है। संयोगवश ही कभी कठिनाइयाँ आती हैं, पर जब आत्मिक प्रगति के लिए असुविधाओं से जूझना आवश्यक है तो उन्हें जानबूझ कर आमन्त्रित करना पड़ेगा। यह कार्य सुविधाओं पर जानबूझकर अंकुश प्रतिबंध, लगाने से ही बन पड़ता है। अस्वाद व्रत, ब्रह्मचर्य पालन, मौन साधना, पदयात्रा, शीत ताप सहन जैसे मन मारने वाले अनुशासन इसीलिए अपनाये जाते हैं कि अभावग्रस्त अथवा कठिनाइयों से भरी हुई परिस्थितियों में बिना खिन्न हुए समत्व बुद्धि के साथ किस प्रकार रहा जा सकता है। पानी के प्रवाह को रोकने से जो प्रतिरोधी शक्ति उत्पन्न होती है उससे शक्तिशाली बिजली घर बनते हैं। लालसाओं और लिप्साओं पर नियन्त्रण लगाने से खिन्नता होनी स्वाभाविक है, पर मन को निग्रहीत करके जब प्रस्तुत विपन्नता को मनोबल वृद्धि की दृष्टि से स्वेच्छापूर्वक अपनाया जाता है तो वह तपस्या बन जाती है। तपसाधना से संकल्प बल, मनोबल, साहस, धैर्य जैसे अनेक सद्गुणों का विकास होता है और आत्मनिष्ठा का परिपाक होता है।

मृदुलता, मधुरता, स्नेह, सहयोग आदि के अनुकूल वातावरण में सहज ही प्रसन्नता होती है और प्रशंसा भी उपलब्ध होती है, किन्तु यह प्रयोग सज्जनता के क्षेत्र में ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। दुष्टता एवं भ्रष्टता को दया, करुणा, मैत्री, उपदेश आदि के आधार पर न तो बदला जा सकता है न सुधारा। उसके लिए सात्विक क्रोध अपनाना पड़ता है। शास्त्रकारों ने ऐसी प्रतिरोध वृत्ति को 'मन्यु' कहा है। प्रार्थना की गई है कि "हे भगवान आप मन्यु हैं। हमें भी मन्यु दीजिए।" दुष्टता के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न होना चाहिए तभी उनसे असहयोग, परिधि, संघर्ष बन पड़ेगा। इससे कम में उनके सुधार की कोई आशा नहीं। दुष्टता को सहन करते रहने पर दुष्टों का हृदय बदल जायगा, यह किन्हीं ऋषि–मुनियों द्वारा अपनाई जाने वाली अपवाद प्रक्रिया हो सकती है, पर यह सर्वसाधारण द्वारा अपनाया जाने वाला लोकव्यवहार नहीं है। यदि यह लोक व्यवहार रहा होता तो पुलिस, कानून, जेल, सेना, कोर्ट कचहरी आदि की कोई आवश्यकता न पड़ती। सड़े अंग को काटकर अलग न किया जाय तो यह खतरा बना ही रहेगा कि उसका विष आगे बढ़े और जहाँ विकृति नहीं है वहाँ भी सड़न उत्पन्न कर दे।

इंगलैंड का सम्राट जेम्स अपने कोष में अधिकाधिक धन एकत्रित करने के लिए धन लेकर उपाधियाँ वितरित किया करता था। वह जानता तो था कि मात्र उपाधि प्राप्त कर लेने से कोई योग्य व महान नहीं बनने का परन्तु मूर्खों के तुच्छ अहंकार पोषण के लिए वह ऐसा करके अपना भी स्वार्थ सिद्ध करता रहा।

एक दिन एक व्यक्ति उसके सामने उपस्थित हुआ व उसने कहा "महाराज मुझे सज्जनता की उपाधि दे दी जाय" जेम्स ने उत्तर दिया "मैं तुम्हें लार्ड, ड्यूक, दार्शनिक, विचारक, वैज्ञानिक तो बना सकता हूँ पर सज्जन नहीं बना सकता" सच है सज्जनता खरीदी नहीं जा सकती।

अवतारों की कथा, गाथाओं में उनकी दोनों प्रतिक्रियाएँ चरितार्थ होती जाती हैं। धर्म की स्थापना और अधर्म का हनन। सभी अवतारी आत्माएँ यही करती रही हैं। उन्होंने दुरात्माओं से संघर्ष किया है। दुष्प्रवृत्तियों से कठोरतापूर्वक निपटने की नीति अपनाई है। इसके उपरान्त ही वे धर्मधारणाओं की स्थापना कर सकने में सफल हुए हैं। मनुष्य को सुविधा चाहने और सज्जनता पसंद करने की इच्छा स्वभावतः होती है। पर उसे ऐसा मन भी बनाना चाहिए कि संयम की व्रतशीलता अपना सके। दुष्टता के प्रति मन्यु प्रकट करा सके। इस प्रकार आमन्त्रित कठिनाई मनुष्य को आत्मबल का धनी बनाती है और आत्मोत्कर्ष में सहायक सिद्ध होती है। *

योगासनः एक समग्र उपचार प्रक्रिया

स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए केवल आहार व मनोबल ही पर्याप्त नहीं शरीर को हिलने-डुलने का भी अतिरिक्त समय मिलना चाहिए अन्यथा उसके विभिन्न अंग-अवयव धीरे-धीरे व्याधिग्रस्त होते चले जायेंगे । योगासनों का विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता रहा है यद्यपि पुरातनकाल से ही इनका आविष्कार आत्मिक उन्नति के लिए शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग दशा में बनाये रखने की दृष्टि से किया गया था, इनका मूल उद्देश्य चक्र, उपत्यिकाओं जैसे शरीर के सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों-ऊर्जा स्रोतों पर दबाव डालना तथा उनमें सन्निहित अतीन्द्रिय क्षमताओं दिव्य सामर्थ्यों को जाग्रत और विकसित करना था । किन्तु विज्ञान क्षेत्र में काया को ही प्रधानता मिलने के कारण योग के सम्बन्ध में उसका भौतिक पक्ष ही आकर्षक लगा है और आसन, प्राणायाम को ही योग माना तथा उसके सहारे स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्रयत्न किया गया है ।

आधुनिक स्वास्थ्य विद्या विशारदों ने भी योगाभ्यास परक आसन-व्यायामों को शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक पाया है । उनमें से बहुत सी क्रियाओं को कुछ परिवर्तित करके सर्वसाधारण के लिए सरल भी बना दिया गया है । आजकल इन यौगिक व्यायामों का अभ्यास कितने ही साधारण मनुष्य व्यक्तिगत रूप से करते हैं । साथ ही बहुसंख्य स्कूलों कालेजों में विद्यार्थियों, खिलाड़ियों एवं अन्तरिक्ष विज्ञानियों को उनका सामूहिक रूप से अभ्यास कराया जाता है । भारत के अतिरिक्त योरोप और अमेरिका के कितने ही महाविद्यालयों में इस संदर्भ में गहन अनुसंधान चल रहा है । विद्यार्थियों को नियमित योगाभ्यास कराया और विभिन्न शारीरिक अंगों तथा श्वसन तंत्र आदि की क्रियाओं में हुए परिवर्तनों को जाँचा-परखा जाता है । स्वास्थ्य संवर्धन के साथ ही मानसिक एकाग्रता को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है ।

योगासनों के सम्बन्ध में जो शोध-अनुसंधान देश और विदेशों में चल रहा है, उसमें वे अंग संचालन की सामान्य व्यायाम प्रक्रिया न रहकर उससे अधिक बढ़े-चढ़े सिद्ध हो रहे हैं । जिन आसन अभ्यासों को कभी उपहासास्पद ठहराया जाता था, अब उनकी उपयोगिता देखते हुए तथाकथित सभ्यताभिमानियों को भी आकर्षित होते देखा जाता है ।

सोवियत रूस के सुप्रसिद्ध व्यायाम चिकित्सा विशेषज्ञ एम. सारकी सौव सैराजिनी ने "मैन मस्ट बी हेल्दी" नामक पुस्तक लिखी है । वे अपने विषय के मर्मज्ञ और विशेषज्ञ समझे जाते हैं । उक्त पुस्तक में उनने स्वस्थ रहने के लिए योगासन और प्राणायाम को दैनिक जीवन में अनिवार्य रूप से सम्मिलित करने का परामर्श दिया है । इसी तरह सेंट्रल क्लीनिक हॉस्पीटल, मास्को के बाल-रोग विशेषज्ञ एवं सर्जन डॉ. अनातोली ने रोगी बच्चों को सरल साधारण योगासनों के माध्यम से नीरोग करने में असाधारण सफलता पायी है । वहीं के डॉ. कॉनसटेनटिन बुटिंको नामक हृदय रोग विशेषज्ञ ने सैकड़ों विभिन्न प्रकार के रोगियों को यौगिक क्रियाओं द्वारा ठीक करने में आशातीत सफलता प्राप्त की है । उन्होंने दमा से पीड़ित व्यक्तियों को औषधियाँ देने के बजाय आसन और प्राणायाम का अभ्यास कराया । परिणाम स्वरूप उनके शरीर में प्रवेश करने वाली ऑक्सीजन एवं कार्बनडाइ आक्साइड के बीच रहने वाला असन्तुलन दूर हो गया और दमा के रोगियों को बहुत लाभ हुआ । दमा के अतिरिक्त योगासनों द्वारा मिर्गी, उच्च रक्त चाप, एवं हृदय रोग जैसी घातक बीमारियों का भी उपचार करने में उनने सफलता प्राप्त की है ।

इनदिनों विश्व में करोड़ों की संख्या में मधुमेह के रोगी हैं । मेडिकल साइन्स के द्वारा अभी तक इसका कोई सुनिश्चित उपचार ज्ञात नहीं हो सका है । किन्तु यौगिक प्रक्रियायों द्वारा इस रोग को नियंत्रित करने के वैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किये हैं, उसने चिकित्सा के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति का जन्म दिया है । इसी संदर्भ में पिछले दिनों अमेरिका की "यौगिक ट्रीटमेंट रिसर्च सेन्टर" नामक संस्था में शोधकर्ताओं द्वारा विभिन्न आयुवर्ग के २८३ मधुमेह के रोगियों पर तीन महीने के लिए प्रयोग किया गया । उन्हें संतुलित भोजन के रूप में ९८ ग्राम वसीय पदार्थ ४०० ग्राम कार्बोहाइड्रेट, १०० ग्राम प्रोटीन अर्थात् कुल २९०० कैलोरी नियमित रूप से प्रदान किये गये । समय-समय पर उनका भार, मूत्र परीक्षण, रक्त शर्करा, ब्लड ग्लूकोज की जाँच तथा

हृदय का ई. सी. जी. द्वारा परीक्षण किया गया।

रोगियों को प्रतिदिन प्रातः सायं दो बार सर्वांगासन, हलासन, मयूरासन, पादहस्तासन, उत्तान पादासन, शीर्षासन, शवासन आदि सरल आसन एवं कुछ अन्यान्य यौगिक क्रियायें कराई जाती रहीं। साथ ही उनकी दिनचर्या नियमित क्रम से रखीं तथा पूजा-उपासना का प्रार्थना एवं ध्यान साधना आदि का भी समावेश रखा गया।

तीन माह के परीक्षण के बाद पाया गया कि ५२ प्रतिशत रोगी उससे लाभान्वित हुए। इस अवधि में जिन्हें बहुत अल्प लाभ पहुँचा या ठीक नहीं हुए वे या तो जन्म से रुग्ण थे अथवा लम्बी अवधि से बीमार रहे थे।

हृदय रोगियों पर भी आसनों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। मद्रास मेडीकल कॉलेज के मूर्धन्य चिकित्सा विज्ञानी डॉ. लक्ष्मी कान्तन् ने ऐसे उच्च रक्त-चाप के रोगियों पर प्रयोग किये जिन्हें मैडीकल चिकित्सा से कोई विशेष फायदा नहीं हुआ। रोगियों की स्थिति के अनुसार उन्हें शवासन, हलासन, सर्वांगासन और विपरीत करणी मुद्रा का महीनों नियमित अभ्यास कराया गया। परीक्षणोपरान्त पाया गया कि रोगियों को पहले की अपेक्षा अच्छी गहरी नींद आने लगी और वे अधिक स्फूर्ति एवं शक्ति का अनुभव करने लगे। इसी प्रकार के परिणाम डॉ. के.के. दाँते ने भी शवासन के प्रभाव से हृदय रोगियों पर पाये है। अमेरिका के वरिष्ठ चिकित्सक डा. बेनसन ने भी प्रयोग के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि शवासन एवं ध्यान का हृदय रोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

शीर्षासन को योगासनों में सबसे उत्तम माना गया है। इस पर वैज्ञानिक प्रयोग परीक्षण भी किये जा रहे हैं। पौलैण्ड के प्रसिद्ध चिकित्सक एवं "थर्डक्लीनिक ऑफ मेडीसन" के निदेशक डा. एलेक्जेण्ड्रोविच जूलियन ने शीर्षासन द्वारा शारीरिक अवयवों पर पड़ने वाले प्रभावों का गहन अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया। इसके लिए उन्होंने शारीरिक मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों को चुना और प्रभाव को देखने के लिए एक्सरे, ई. सी. जी. आदि उपकरणों की सहायता ली। ऐसे व्यक्तियों को खाली पेट की स्थिति में १० मिनट से लेकर क्रमशः बढ़ाते हुए ३०-४० मिनट तक नियमित रूप से चार माह तक शीर्षासन कराके शवासन कराया गया। आसन के पूर्व एवं बाद में किये गये परीक्षणों से निम्न निष्कर्ष सामने आये।

देखा गया कि शीर्षासन से रक्त को जमाने वाले पदार्थों की मात्रा में सन्तुल आने लगता है। इससे हृदय रोगों की रोकथाम में सफलता मिली है। आसन के प्रभाव से श्वेत रक्त कणों में अभिवृद्धि पायी गई जिससे शरीर की जीवनी शक्ति एवं रोग निरोधक क्षमता में वृद्धि हुई। एक्सरे द्वारा देखे जाने पर वक्षस्थल फैला हुआ पाया एवं हृदय पूरी तरह दबाव रहित देखा गया। शीर्षासन से वस्तुतः फेफड़ों को पर्याप्त खुला स्थान मिलता है, अतः उनमें आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। यह अभिवृद्धि ३५ प्रतिशत तक देखी गयी है तथा श्वास-प्रश्वास की दर एवं मात्रा में कमी पायी गयी है। देखा गया है कि श्वास की मात्रा तो प्रति मिनट ८ लीटर के स्थान पर ३ लीटर हो गयी, परन्तु फेफड़ों की उसको कन्ज्यूम करने-अवशोषित करने की क्षमता बढ़ गयी। निष्काषित दूषित वायु में ऑक्सीजन की मात्रा में १० प्रतिशत कमी हो गयी।

> *द्वितीय महायुद्ध के दिनों अलफ्रेड नोबुल ने डाइनामाइट बारूद का आविष्कार किया। पक्ष-विपक्ष दोनों ने उसे खरीदा आविष्कारक को भारी लाभ हुआ।*
>
> *संग्रहीत पैसे का क्या किया जाय? इस संबन्ध में उसने उदारतावादी लोकहित वाला दृष्टकोण अपनाया। अरबों की सम्पदा का उसने ट्रस्ट बना दिया और उसके ब्याज से संसार भर के विशिष्ट व्यक्तियों को पुरस्कृत करने की योजना बनाई।*
>
> *इस योजना के अन्तर्गत इन दिनों प्रत्येक विषयों के मर्धन्य विद्वानों को लग भग चार लाख की पुरस्कार राशि मिलती है। प्रतिभाओं के निखार में इससे भारी योगदान मिलता है।*

लोनावाला-महाराष्ट्र के अनुसंधानकर्ताओं ने सर्वांगासन एवं मयूरासन को सामान्य स्वास्थ्य संवर्धन और दुर्बलता ग्रसित रोगियों के लिए अन्य आसनों की तुलना में अधिक उपयोगी पाया है। चेकोस्लोवाकिया के प्रयोगकर्ता वैज्ञानिकों ने भुजंगासन एवं शवासन के आधार पर मानसिक तनाव मिटाने में असाधारण रूप में सफलता पायी है।

योगाभ्यास परक आसन, प्राणायाम पूर्णतः वैज्ञानिक व्यायाम उपचार हैं। इनमें मांसपेशियों में खिंचाव एवं फैलाव होने से रक्तप्रवाह की गति में तीव्रता तो आती ही है, साथ-साथ शरीर के सूक्ष्म ऊर्जा केन्द्रों पर भी दबाव पड़ता है। फलतः स्वास्थ्य सम्वर्धन के साथ चेतनात्मक परिष्कार एवं अन्यान्य आध्यात्मिक लाभ भी होते हैं। इन्हें जीवन में स्थान मिलना ही चाहिए। ✳

नीति-निष्ठा जीवन में कैसे उतारी जाय?

धर्म सम्प्रदायों की अनेकानेक प्रथा परम्परायें हैं। अध्यात्म तत्व दर्शन की अनेकानेक शाखा-प्रशाखाएँ हैं। उन सबके निष्कर्ष प्रतिपादन का यदि सार संक्षेप देखा जाय तो तथ्य एक ही उपलब्ध होता है। व्यक्तिगत जीवन में आत्मपरिष्कार और सामूहिक जीवन में पुण्य परमार्थ। किसी धर्म या दर्शन का विस्तार कितना ही अधिक क्यों न हो, प्रतिपादन किसी भी शैली में क्यों न किया गया हो, पर उद्देश्य इतना ही है। आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता की त्रिविध मान्यताओं का प्रयोजन यदि ढूँढ़ा जाय तो इतना ही मिलता है कि व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य को श्रेष्ठ उत्कृष्ट बनना चाहिए और सामूहिक जीवन में उसमें उदारता होनी चाहिए। इसी छोटे से तथ्य को अनेक मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से विविध मान्यताओं एवं तर्कों के साथ प्रतिपादित किया है।

इन्हें सरल और व्यावहारिक भाषा में कहना हो तो नागरिकता और सामाजिकता कहा जा सकता है। नागरिकता में कर्तव्य पालन, सदाचार, संयमी होने के लिए दबाव दिया गया है। सामूहिक जीवन में उसका व्यवहार सज्जनता, सेवा भावना से भरा-पूरा होना चाहिए।

नागरिकता का प्रयोजन वही है जो अध्यात्म का। इस स्तर के [illegible]-प्रतिपादन एक ही परामर्श देते हैं कि व्यक्ति शिष्ट, सभ्य, विनीत एवं कर्तव्य निष्ठ बने। सामाजिकता का अर्थ भी वही है जो धर्मधारणा या उदारता सेवा भावना का। करुणा, दया, दान आदि इसी परिधि में आते हैं। पिछड़ों की सहायता करने एवं सत्प्रवृत्तियों को अधिकाधिक विस्तृत करने की प्रेरणा धर्म तत्व से मिलती है। यही सामाजिकता है।

ईश्वर, परलोक, सद्गति का विशालकाय ढाँचा इन्हीं दोनों मान्यताओं को अपनाने के लिए प्रकाश देता है। इन दोनों का सम्मिश्रण 'नीति' के अन्तर्गत है। दूसरे शब्दों में इसे विवेक और न्याय भी कह सकते हैं। विवेक यह है कि अपना चिन्तन और चरित्र उत्कृष्ट स्तर का हो। व्यवहार में उदार-सज्जनता का गहरा पुट लगा हुआ हो। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए अपराधियों को दण्ड देना भी आता हो। यह व्यक्ति और समाज के हित में है। उद्दण्डता पर नियन्त्रण करने के लिए प्रताड़ना की भी आवश्यकता है। न्यायाधीश इसे करते रहते हैं पर उसमें उनका व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। अपराधी को दण्ड सहकर प्रायश्चित्त का अवसर मिलता है। साथ ही सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन का क्या परिणाम होता है यह समझने का सर्वसाधारण को अवसर मिलता है। न्याय के साथ उत्पीड़न भी जुड़ा हो सकता है, पर है वह व्यक्ति और समाज के हित में। इसलिए उसे नीति के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया गया है। उदारता का अर्थ उद्दण्डता को छूट देना नहीं है और न अनाचार को सहन करना। अवांछनीयता को सहन करते रहा जाय तो इससे अनाचार को ही प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार की क्षमा तो अनर्थकारी हो जायेगी। अहिंसा का तात्पर्य अपनी ओर से किसी को अकारण दुःख न देना है। अहिंसा की रक्षा के लिए यदि अनिवार्य हो तो हिंसा भी अपनायी जा सकती है।

मूल प्रश्न यह है कि नीति की रक्षा किस प्रकार हो। व्यक्ति को सदाचार के पालन के लिए समझाया भी जा सकता है और बाधित भी किया जा सकता है। इसी प्रकार लोकहित में उदारता बरतने के लिए, सेवा धर्म अपनाने के लिए प्रशंसा से लेकर भर्त्सना तक का उपयोग किया जा सकता है। संकीर्ण स्वार्थपरता के वशीभूत होकर लोग मात्र अपनी ही सुविधा देखते हैं। पड़ोसी पर क्या बीत रही है, इतना सोचने के लिए उनके पास भाव संवेदना ही नहीं होती ऐसी कृपण निष्ठुरता की भर्त्सना की जाती है। स्वर्ग का प्रलोभन और नरक का भय इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए है कि व्यक्ति संयमी, सदाचारी रहे और अपने साधनों को मिलबाँट कर खाये। जिनकी सहायता अपेक्षित है उनके लिए सेवा सहायता की नीति अपनाये।

पुण्य व्यक्तिगत सज्जनता को कहते हैं - परमार्थ प्रयोजनों के लिए उदारता का परिचय देने को। पुण्य परमार्थ का युग्म दूसरे शब्दों में नागरिकता और सामाजिकता का समन्वय कहा जा सकता है। पुण्य

ही अध्यात्म है और परमार्थ धर्म । पुरातन भाषा में जिसे अध्यात्म और धर्म कहा जाता है उसी को सरल सुबोध भाषा में इन दिनों नागरिकता–सामाजिकता कहा जा सकता है ।

व्यक्ति की वरिष्ठता इसी कसौटी पर कसी जाती है कि वह व्यक्तिगत जीवन में कितना सज्जन, सदाचारी रहा और सामूहिक जीवन में उसने कितनी सेवा भावना का परिचय दिया । नर पशुओं और देव मानवों में यही अन्तर है कि एक उद्दंड अनाचारी होता है और दूसरा आदर्शवादी, संयमी–सदाचारी । देव मानव उदारता अपनाये रहते हैं और सामर्थ्य भर सज्जनता को सींचते रहते हैं । मानवी गरिमा का पौधा मुरझाने नहीं देते ।

दूसरों से जैसा व्यवहार हम अपने लिए चाहते हैं वैसा ही बरताव दूसरों के साथ भी करें, इसी आदर्श को शास्त्रकारों ने "आत्मवत् सर्व भूतेषु" की मान्यता के अन्तर्गत लिया है । हमारी आकांक्षा रहती है कि हर कोई हमारे साथ सद्व्यवहार करे, सहायक बने, उदारता बरते । वैसी ही इच्छा हर कोई अपने सम्बन्ध में भी करता है । जो न्याय का समर्थक है उसे वह मात्र अपने लिए ही उपलब्ध नहीं करना चाहिए वरन् हजारों को उपलब्ध कराने के लिए तत्पर रहना चाहिए ।

कर्तव्य पालन में उपेक्षा न करें । अधिकार प्राप्त करने में यदि कुछ कमी रहती हो तो उसे किसी प्रकार सहन भी करें । यही है नीति । अपने आपको समर्थ, बलिष्ठ, सम्पन्न बनाया तो जाय पर वह मात्र अपनी ही तृष्णा, वासना, अहंता की पूर्ति के लिए न हो । उसका समाज में सभी को लाभ मिले । न्याय की रक्षा में वे बढ़े हुए साधन काम आयें तभी उनकी वास्तविक उपयोगिता है ।

समाज का सभ्य सदस्य होने के नाते मनुष्य पर अनेक जिम्मेदारियाँ आती हैं । वह अपने को सुविकसित बनाने के लिए इसलिए प्रयत्न करे ताकि वह दूसरों को भी ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सके । अन्याय को रोक सके । दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन में एक बलिष्ठ योद्धा की भूमिका निभा सके । सत्प्रवृत्तियों के क्षेत्र विस्तार में वह कुशल माली की तरह अपना कौशल एवं पुरुषार्थ प्रकट कर सके ।

निजी समस्याओं का समाधान औचित्य की मर्यादाओं में रहकर किया जाय । प्रतिपक्षियों के साथ विचार विनिमय द्वारा गलत फहमियों के निवारण के लिए प्रयत्न करने का द्वार कभी बन्द न किया जाय । दिग्भ्रान्तों को वास्तविकता समझाये और सही मार्ग पर लगाने की जिम्मेदारी भी वहन की जाय । यह बिना माँगे सहायक होने पर भी याचक को दान देने की प्रत्यक्ष दानशीलता की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । याचक तो मात्र अपने अभावों की पूर्ति के लिए साधन मांगता है । उससे कुछ समय की उसकी कठिनाई हल भी हो जाती है किन्तु पुरुषार्थ के अभाव में वह सहायता चुक जाती है और फिर अभाव आ घेरते हैं । किन्तु सद्ज्ञान दान में ऐसी बात नहीं है । दिग्भ्रान्त को सन्मार्ग पर चल पड़ने की प्रेरणा देना भी इतना बड़ा और महत्वपूर्ण दान है जिससे उसकी अनेकानेक समस्याओं का स्थायी समाधान निकलता है । नीति तत्व के अन्तर्गत यह सभी प्रयास आते हैं ।

*

डॉ. लोहिया को जिस प्रकार देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम पिता से विरासत में मिले थे, उसी प्रकार उन्हें मस्त मौलापन भी पिता से ही प्राप्त हुआ था । यही कारण था कि जब वे जहाज से मद्रास बन्दरगाह पर उतरे तो उनके पास कलकत्ता पहुँचने के लिए टिकट के पैसे तक नहीं थे ।

किराये का प्रबन्ध भी उन्होंने अजीब ढंग से किया, बन्दरगाह से चलकर वे प्रख्यात अखबार "हिन्दू" कार्यालय में पहुँचे और सम्पादक से मिले । सम्पादक से उन्होंने कहा मुझे आपके समाचार पत्र के लिए दो लेख देने हैं ।

दीजिए । कहाँ है लेख सम्पादक ने पूछा । कागज कलम दें, मैं अभी लिखकर देता हूँ ।

लोहिया के मुँह से यह सुनकर सम्पादक उनकी ओर ताकने लगा तब डा. लोहिया ने वास्तविक कारण बता दिया और हिन्दू के सम्पादक ने उन्हें लेख लिखने के लिए आवश्यक सामान उपलब्ध करा दिया ।

कुछ घण्टों में डा. लोहिया ने दो लेख इतने जानदार लिखे कि सम्पादक भी उनकी प्रतिभा का लोहा मान गया । लेख देख कर सम्पादक ने उपयुक्त पारिश्रमिक दिया और उसी के द्वारा वे कलकत्ता पहुँचे ।

समझदारी तेजी से घट रही है

दीर्घ जीवन अपने देश में कभी सौभाग्य का चिन्ह माना जाता था और चिरायु शतायु होने का आशीर्वाद दिया जाता था। अब स्थिति उल्टी हो गई है। प्राचीन काल में वयोवृद्ध भी वानप्रस्थ, सन्यास लेकर लोकसेवा के महत्वपूर्ण कार्यों में लगे रहते थे। आधी आयु लोक के लिए आधी परलोक के लिए लगाने से वृद्धावस्था व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ही हितकर होती है। तब ढलती आयु से ही अध्यात्मपरक चिन्तन चल पड़ने से न अपने लिए बुढ़ापा भारभूत होता और न समाज के लिए।

अब कई प्रचलन नये आये हैं। ढलती आयु तक बच्चे पैदा करते रहने के कारण उनकी पंक्ति इतनी बड़ी हो जाती है कि लोभ मोह को अपनाये बिना और कोई रास्ता नहीं। दूसरे संयुक्त परिवार की प्रथा टूटती जाती है। जो लड़का कमाऊ होता जाता है वही अपनी बीबी को लेकर अलग हो जाता है। बूढ़े की जवानी में कमाई पूँजी तो बड़े लड़के, लड़कियों की पढ़ाई शादी आदि में खर्च हो जाती है। पिछले बच्चों का तथा स्वयं वृद्ध वृद्धाओं का निर्वाह कठिन पड़ता है। क्योंकि शरीर थक जाने से उतना परिश्रम नहीं हो पाता, जितना जवानी में कर लेते थे।

यह हवा पाश्चात्य देशों से चली है और अपने देश की ओर बढ़ती आ रही है। वृद्धावस्था घर परिवार को संभालने और साथ ही गिरते स्वास्थ्य की दुहरी चोट से बुरी तरह लड़खड़ाती जाती रही है।

बुढ़ापे में उत्पन्न हुए और आजीविका स्वल्प होने के कारण बच्चे संख्या की दृष्टि से तो कई हो जाते हैं पर स्वास्थ्य की दृष्टि से इतने गये गुजरे होते हैं कि उन्हें एक प्रकार से अपंग ही कहना चाहिए। यह प्रकोप भारत जैसे गरीब देशों पर विशेष रूप से होता है। इन दिनों की जनगणना के हिसाब से संसार भर में छियालीस करोड़ व्यक्ति अपंग हैं। वे अपना निर्वाह भार स्वयं वहन नहीं कर सकते। दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। जिन पर भी वे आश्रित रहते हैं वे उनके लिए भार रूप ही बनकर रहते हैं। कुटुम्बियों की बेरुखी हो तो उन्हें भिक्षा का आश्रय ही लेना पड़ता है।

वृद्धावस्था चाहती है कि ढलती उम्र में शिथिलता भले ही आ घेरे पर मानसिक दृष्टि से सन्तुष्ट निश्चिन्त रहें। किन्तु आदि से अन्त तक जैसे वातावरण में रहना पड़ा है, उसे देखते हुए क्रोध चिड़चिड़ापन, चिन्ता जैसी मानसिक अपच, रक्तचाप, मधुमेह जैसी शारीरिक व्यथाएँ घेर लेती हैं। जिन्हें अतिशय नशेबाजी की आदत पड़ जाती है वे बुढ़ापे की रेखा तक पहुँचते-पहुँचते मनःस्थिति और परिस्थितियों के दुहरे दबाव से सदा खिन्न, उद्विग्न रहने लगते हैं। सम्मान जो मिलना चाहिए, वह व्यक्तित्व के घटिया होने के कारण मिल नहीं पाता। शरीर श्रम के योग्य नहीं रहता और मन अपने को एकाकी निठल्ला अथवा तिरस्कृत अनुभव करके चिन्ता में डूबा रहता है। खाँसी अनिद्रा, अपच जैसे रोग आमतौर से हो जाते हैं, उनकी व्यथा सताती है सो अलग।

पारस्परिक सहानुभूति के अभाव में तथा थोड़ी सी प्रतिकूलता में आपे से बाहर हो जाने के कारण उनमें से कितने ही आत्महत्या कर बैठते हैं, घर छोड़कर निकल जाते हैं और अभावभरी परिस्थितियों में दम तोड़ देते हैं।

पाश्चात्य देशों में स्थिति और भी बुरी है। संयुक्त परिवार का तो कोई प्रश्न ही नहीं। संबंधी कुटुम्बियों की ओर से सहानुभूति तक नहीं मिलती। परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वे या तो कुछ बचा लेते हैं अथवा सरकारी 'बुढ़ाखाने' में उन्हें निर्वाह जितना आश्रय मिल जाता है। सहानुभूति के अभाव में अपने को सर्वथा निरर्थक समझने वाला व्यक्ति समय को काट नहीं पाता। मद्यपान की प्रवंचना से उत्तेजना और खिन्नता हर घड़ी छाई रहती है।

अमेरिका जैसे देशों में आर्थिक कठिनाई तो नहीं है पर नैतिक संकट ऐसा छाया रहता है जिसमें अपने को सुरक्षित विरले ही समझ पाते हैं। कलह, वासना, द्वेष, लालच आदि के कारण उद्दण्ड व्यक्ति छोटी बड़ी दुर्घटनायें करते रहते हैं। पिछले दिनों अमेरिका में ३८२१७ आत्म हत्यायें हुई और आक्रान्ताओं द्वारा की गई हत्यायें इससे प्रायः दूनी थीं।

अपंगों में गणना सामान्यतया उनकी की जाती है,

जो जन्मजात विकलांग थे या किसी दुर्घटना के शिकार हो गये हों । एक दूसरी प्रकार के अपंग हैं जो मानसिक क्षेत्र का अपना सन्तुलन गँवा बैठते हैं, जो परिस्थिति को समझ नहीं पाते और उनके अनुरूप हल सोच नहीं पाते । मस्तिष्क और शरीर का मध्यवर्ती संतुलन बिगड़ जाने से उनके इच्छित कार्य अवयवों से बन नहीं पड़ते । इन्हें पूरी तरह से पागल तो नहीं कहा जा सकता पर वे अर्धविक्षिप्त स्थिति के होते हैं । इन्हें सनकी कहा जा सकता है । वे उस प्रकार नहीं सोच पाते जो कर सकते हैं । जो कर सकते हैं वे उनसे सोचते नहीं बनता । मस्तिष्क और शरीर की मध्यवर्ती कड़ी ऐसी है कि वे लड़खड़ा जायँ तो शरीर और मस्तिष्क का मध्यवर्ती संतुलन बिगड़ जाता है और मनुष्य जो चाहता है वह कर नहीं पाता और वह कर बैठता है जो नहीं चाहता । ऐसे लोग हाथ पैर से सही सलामत हों तो भी वे अपंगों में ही गिने जाते हैं । इस स्तर के लोगों की संख्या अब तेजी से बढ़ रही है पर उनकी गणना प्रत्यक्षतः नहीं हो सकती, क्योंकि बिना व्यक्तिगत सम्पर्क किए उनके बारे में यह समझा नहीं जा सकता कि इस प्रकार का अन्तर उनकी भीतरी और बाहरी स्थिति के बीच चल रहा है । उस वर्गीकरण के बिना उसकी गणना कैसे हो ? फिर भी अपने परिवार या साथियों के लिए वे भार रूप ही होते हैं । उन्हें बार-बार संभालना और देखना पड़ता है । बिना मार्गदर्शक की सहायता के वे कुछ भी ऐसा कर सकते हैं जो अटपटा लगे या अनर्थ खड़ा कर दें ।

ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण ढूँढ़ने पर विशेष रूप से इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि प्रकृति के अनुशासन का निरंतर उल्लंघन करते रहने, शरीर संरचना के अनुरूप अपने क्रियाकलापों का ढर्रा न बिठाने से लोग इस अवज्ञा को चतुरता समझने लगते हैं । उस चतुरता पर गर्व भी करते हैं, फलतः ऐसी आदत पड़ जाती है कि सामान्य जीवनक्रम उन्हें सुहाता नहीं और उनके विपरीत चलने या काटछाँट करने की आदत पड़ जाती है । फल यह होता है कि वे हर अटपटे काम को करने में बुद्धिमत्ता अनुभव करते हैं और आमतौर से इस तरह सोचते और करते रहते हैं जो कुछ समय साथ रहने वाला सहज ही अनुमान लगा ले कि यह स्वाभाविक स्थिति नहीं है । वह अपने को अहंकारी हीन या अस्तव्यस्त स्थिति में अनुभव कर रहा है ।

बाहर के लोगों के साथ व्यवहार करते हुए तो वह लोकलाज एवं शिष्टाचार का किसी कदर अनुमान भी लगा लेता है , और सँभल भी जाता है पर घर परिवार वालों के सन्मुख ऐसा भय न रहने से वह विसंगति विशेष रूप से बढ़ जाती है और उन्हें बालकों की तरह संभालना पड़ता है । इस तरह की अपंगता जिस तरह से बढ़ रही है उसे देखते हुए लगता है कि समझदारी में तेजी से ह्रास हो रहा है । उपचार सभी का किया जाता है । वृद्धावस्था से जुड़े रोगों का भी, अनायास आ धमकने वाले रोगों का तथा शरीर को अपंग बनाने वाली विकृतियों का भी । किन्तु मानसिक विकलांगता को, समझदारी को कुण्ठित कर देने वाले रोगों का भी निदान हो व उपचार का स्वरूप बनाया जाय, यह समय की आवश्यकता है ।

एक बार पाटलिपुत्र की गंगा में भयंकर बाढ़ आई । समीपवर्ती बस्तियों, खेतों में पानी भर गया और महाविनाश के दृश्य उपस्थित होने लगे ।

ज्ञानियों की एक सभा हुई उसमें विचार करके निश्चय हुआ कि कोई ऐसी स्त्री जो सर्वतोभावेन पतिव्रता रही हो, यदि इस पानी को पैरों से स्पर्श करे तो बाढ़ उतर सकती है ।

समस्त नगर में ऐसी स्त्री तलाश करायी गयी । पतिव्रता आईं तो पर सर्वतोभावेन पतिव्रता ऐसी न मिली जिसके चरण स्पर्श से बाढ़ उतर जाती । अनेक महिलाएँ आईं और प्रयोग में परीक्षा देकर असफल वापस चली गईं ।

अन्त में एक वेश्या आई उसने पैर लगाये और तत्काल बाढ़ उतरना शुरू हो गई । सभी को बड़ा आश्चर्य था कि वेश्या पतिव्रता कैसे हुई ?

वेश्या ने उस रहस्य को स्वयं बताया । जिस दिन मैं जिसे अपना पति वरण करती हूँ । उस दिन समूचे तन, मन, धन से उसी के निमित्त अपने को अर्पित करती हूँ । दूसरे किसी का ध्यान तक मनमें नहीं आने देती । भले ही एक दिन के लिए हो वह होती समग्र पतिव्रता ही है ।

लोगों ने समझा कि समग्र समर्पण और अस्थिर व्यवहार में क्या अन्तर है ?

सुदृढ़ संकल्पबल के सहारे आरोग्य प्राप्ति

कभी माना जाता था कि कष्ट साध्य और चिरस्थायी बीमारियाँ भी छुटपुट रोगों की तरह शरीरगत खराबियों के कारण उत्पन्न होती हैं , पर अब यह माना जाने लगा है कि मन का शरीर पर पूरा नियंत्रण है और स्वस्थता, रुग्णता के लिए भी वही उत्तरदायी है । अन्तर्द्वन्द्व, रुग्ण मानसिकता, अशुद्ध चिन्तन ही मस्तिष्क को असंतुलित करता और शरीर को ऐसे चित्र–विचित्र रोगों से व्यथित करता है जो चिकित्सा करते कराते भी काबू में नहीं आते ।

अशुद्ध चिन्तन–अस्वस्थ भावनायें विभिन्न शारीरिक रोगों का कारण बनती हैं । देखा गया है कि कोई मानसिक कष्ट होने पर सारा शरीर शिथिल हो जाता है और क्रियाशक्ति में स्पष्टतः अस्तव्यस्तता दीखने लगती है । भय, चिन्ता शोक, निराशा जैसे प्रसंगों पर किसी भी मनुष्य का चेहरा उदास और सारा शरीर शिथिल देखा जा सकता है । क्रोध, अपमान, द्वेष, प्रतिशोध की स्थिति में किस प्रकार अंग–प्रत्यगों में उत्तेजना दीख जाती है , इसे किसी आवेश ग्रस्त पर छाये हुए भावोन्माद को देखकर सहज ही देखा–समझा जा सकता है । प्रसन्न और निश्चिन्त रहने वाले स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी बनते हैं । इसके विपरीत क्षुब्ध रहने वाले अकारण दुर्बल होते जाते हैं और अकाल मृत्यु से असमय मरते हैं । यह तथ्य स्पष्ट करते हैं कि शरीर संस्थान पर आहार–विहार का जलवायु का जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक भाव संस्थान का प्रभाव पड़ता है । विचारणा भावना की शुद्धता–उत्कृष्टता ही समग्र स्वास्थ्य का मूलाधार है ।

इस संदर्भ में चिकित्सा मनोविज्ञानियों ने गहन खोजें की हैं और पाया है कि प्रेम, मैत्री, दया, करुणा और परोपकारी विचारणाओं से ओत–प्रोत व्यक्ति स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी होते हैं । इसके विपरीत विकृत चिन्तन एवं भावना क्षोभ से ग्रस्त मनुष्य अनेकानेक रोगों से घिरा रहता है । "इन्फ्लुएन्स आफ द माइण्ड अपॉन द बॉडी " नामक अपनी कृति में सुप्रसिद्ध चिकित्सा मनोविज्ञानी डॉ. अलबर्ट ड्यूक का मत है कि विक्षिप्तता, मूढ़ता, अंगों का निकम्मा हो जाना, पाण्डु रोग, केश–पतन, घबराहट, मूत्राशय के रोग, चर्मरोग , फोड़े- फुन्सी, एग्जिमा आदि अनेक स्वास्थ्यनाशक रोग मानसिक विकारों एवं भावनात्मक उद्वेलनों के परिणाम मात्र हैं । मानसिक क्षोभ, भावनात्मक उद्वेलन, निषेधात्मक चिन्तन यह सभी सूक्ष्म शरीर की विकृतियाँ हैं जिनका स्थूल शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है । इसी प्रकार परिष्कृत दृष्टिकोण, स्वस्थ उदात्त चिन्तन, आदर्शवादी विचारधारा सूक्ष्म शरीर को तेजस्वी प्रखर बनाती हैं और उसका श्रेष्ठ प्रभाव स्थूल शरीर पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है ।

"ऐन आयरन विल" नामक पुस्तक के लेखक एवं अमेरिका के प्रख्यात अध्यात्मवेत्ता डा. मॉरडन का यह कथन अक्षरशः सत्य है और भारतीय अध्यात्मोपचार की पुष्टि करता है कि "मनुष्य अपने विचार उच्चस्तरीय बनाले, नये कर ले, चरित्र को ऊँचा उठा ले तो अपने शरीर का कायाकल्प कर सकता है ।" जब मन–मस्तिष्क की धुलाई सफाई वैज्ञानिक उपकरणों से हो सकती है और प्राणियों एवं मनुष्यों को वशवर्ती बनाया और मनचाही दिशा में मोड़ा–मरोड़ा जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि अध्यात्म साधना के उपचार प्रयोगों से मनोमयकोष को अधिक परिष्कृत और सबल संपन्न न बनाया जा सके ।

मनः संस्थान अर्थात् मनोमयकोष ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का ही नहीं प्रतिभा का भी क्षेत्र है । उत्कृष्टता के प्रति आस्था के बीज इसी भूमि में उगते हैं । संकल्प शक्ति का उद्गम केन्द्र यही है । समूचे कायकलेवर को अपने अंचल में यही समेटे हुए है । इस क्षेत्र के अस्त–व्यस्त और विकृत स्थिति में बने रहने पर उसकी प्रतिक्रिया शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालती है । मनःक्षेत्र का शोधन व सशक्त किये जाने की साधना उसकी धुलाई–सफाई कर समग्र स्वास्थ्य का आधार ही नहीं खड़ी करती, वरन् उसे समुन्नत,–सुसंस्कृत बनाने एवं प्रतिभा प्रखरता से सुसज्जित करने का काम भी बहुत हद तक पूरा करती है ।

*

ज्ञान व विज्ञान की समन्वित प्रगति यात्रा

हमारा प्राचीन भौतिक विज्ञान अत्यन्त विकसित था । आज हम जिन यंत्र उपकरणों की कल्पना भी नहीं कर सके हैं, वैसे–वैसे यंत्र तब विद्यमान थे । एक ओर तीन अहोरात्र की वेगवान गति से उड़ने वाले विमान , तो दूसरी ओर ब्रह्मास्त्र, नागपाश, पाशुपत जैसे बार–बार प्रयुक्त होने और लक्ष्य का संधान कर प्रयोक्ता तक लौट आने वाले अस्त्र, मंत्र और यंत्र शक्ति के अद्भुत समन्वय के प्रतीक थे । जब किसी समय वह विज्ञान उत्कर्ष के इतने उच्च शिखर पर पदासीन था, तो आज वह उतुंग ऊँचाई से गिर कर अपमान जनक स्थिति में भूमिलुण्ठित कैसे हो गया ? उसका लोप क्यों हो गया ? यह प्रश्न बार–बार मस्तिष्क में ज्वारभाटे की तरह उठते रहते हैं, पर उत्तर सदा अनुत्तरित ही बने हुए हैं ।

इस संदर्भ में आधुनिक मनीषियों का कथन है कि विद्या की दृष्टि से उस विकसित युग में ऋषि न सिर्फ वैज्ञानिक हुआ करते थे, अपितु आत्मविद्या में भी प्रवीण, पारंगत और विशेषज्ञ होते थे, बल्कि यह कहना कहीं अधिक समीचीन होगा कि वे ऋषि, आत्मविज्ञानी पहले थे, फिर पदार्थ विज्ञानी । अतएव समय के साथ–साथ वे आत्मविद्या की ओर अधिक उन्मुख होते गये, जिससे पदार्थ विज्ञान की ओर से उनका ध्यान शनैः–शनैः हटता गया और वे उसे आत्मविज्ञान के आगे तुच्छ भी मानने लगे । इसी क्रम में एक समय आया, जब उत्कर्ष के शिखर पर पहुँचा भौतिक विज्ञान पूर्णतः लुप्त हो गया एवं उसका पुस्तकीय उल्लेख ही अवशिष्ट के रूप में बचा रह गया । इस प्रकार आत्मविज्ञानी एकांगी बन गये ।

प्राचीन समय में अध्यात्म विज्ञान को परा और भौतिक विज्ञान को अपरा विद्या के नाम से जाना जाता था । ज्ञान विज्ञान की यह दो धाराएँ एक ही वृक्ष की दो टहनियाँ थीं और परस्पर दूध–पानी की तरह घुल–मिल कर रहती थीं । आत्म कल्याण के लिए ऐसा अभीष्ट आवश्यक भी माना गया था । मुंडकोपनिषद् के शौनक–अंगिरस् संवाद से यह स्पष्ट हो जाता है । शौनक ऋषि अंगिरस् से प्रश्न करते हैं "वह कौन सा तत्व है, जिसको जान लेने पर कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता , अर्थात् समस्त विश्व को जाना जा सकता है ?" अंगिरस् ऋषि उत्तर देते हुए कहते हैं–"परा और अपरा नाम से जो दो विद्याएँ प्रसिद्ध हैं, उन्हें प्राप्त करने से ही मनुष्य सर्वज्ञ बन सकता है ।" इस प्रकार ब्रह्मविद्या के परा और अपरा विद्यायें दो अंग हैं, ऐसा अंगिरस् का मानना है । तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगु वल्ली में कहा गया है कि ब्रह्मवर्चस, ब्रह्मविद्या की फलश्रुति है और परा–अपरा दोनों मिल कर ही कल्याणकारी ब्रह्मविद्या कहलाती हैं । कुछ उपनिषदों में इन्हें विद्या–अविद्या और गीता आदि में ज्ञान विज्ञान कहा गया है । लोकमान्य तिलक ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "गीता रहस्य" में इनकी परिभाषा करते हुए लिखा है कि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में एक ही अव्यक्त मूल पदार्थ है, यह जिससे जाना जाता है , वह 'ज्ञान' है एवं एक ही मूलभूत द्रव्य से समस्त संसार की रचना हुई , इसे बताने वाली शाखा 'विज्ञान' है ।

> *सिन्ध कालेज के प्रिंसिपल टी. एल. वास्वानी आरंभिक जीवन में अध्ययन और अध्यापन में लगे रहे । शिक्षा क्षेत्र में उन्होंने बढ़–चढ़ कर ख्याति पाई ।*
>
> *अधेड़ होते ही उन्होंने अपना जीवन सार्वजनिक सेवा के लिए समर्पित कर दिया । स्वतंत्रता संग्राम में जेल गये और फिर देश को ऊँचा उठाने वाले सहयोग में लग गये । उनके जीवनक्रम में असंख्यों को प्रेरणा मिली ।*

आज हमारी स्थिति सर्वथा उल्टी है । हम विज्ञान को महत्व तो दे रहे हैं, पर उसके पूरक और नितान्त महत्वपूर्ण अंग ज्ञान अर्थात् अध्यात्म विज्ञान की उपेक्षा कर रहे हैं, जबकि दोनों की गति–प्रगति और मनुष्य का कल्याण उनके साथ–साथ रहने में ही है । ज्ञान को यदि 'आँख' की संज्ञा दी जाय, तो विज्ञान हमारा 'पैर" होगा । एक के बिना दूसरा एकांगी अधूरा कहलायेगा व लाभ की जगह हानि ही पहुँचायेगा । हम अध्यात्म की अवज्ञा कर तो रहे हैं, पर दूसरी ओर यह भी भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि कहीं हमारा यह प्रयास हमें एक देशीय एकमुखी न बना दे । स्मरणीय तथ्य यह भी है कि अध्यात्म की उपेक्षा कर विज्ञान की ऊँचाइयों को प्राप्त करने का प्रयास करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है । हमारे पूर्वज विज्ञान के एवरेस्ट पर अध्यात्म की सीढ़ियों के सहारे ही पहुँच सके थे । आज भी ऐसा ही करना होगा । ✳

संगीत में छिपी है प्रभावोत्पादक शक्ति

संगीत की प्रभावोत्पादक क्षमता सर्वविदित है। वह न केवल विद्या है, वरन् एक महाशक्ति है। मन-मस्तिष्क की परितृप्ति के अनेकानेक दृश्य-अदृश्य साधन हैं, पर भावनाओं की तृप्ति संगीत के माध्यम से होती है। प्राचीनकाल में संगीत के बल पर प्राकृतिक शक्तियों को भी मनचाही दिशा में मोड़ा-मरोड़ा जा सकना संभव था। वह नाद ब्रह्म की साधना थी-उथले मनोरंजन का माध्यम नहीं। जब तक यह साधना का विषय रहा, तब तक न केवल उसका प्रभाव मनुष्य पर देखा गया, वरन् पशुओं को मुग्ध करने, साँपों का शमन करने, पागल, जंगली हाथियों को वश में करने से लेकर फूल खिला देने, वर्षा कराने, पत्थर पिघला देने जैसे असंभव कार्य तक सम्पन्न कर सकना संभव था। पर कालान्तर में इसे मात्र मनोरंजन का साधन बना दिया गया। इतने पर भी इसकी प्रभावोत्पादक क्षमता कम नहीं हुई। मधुर स्वर लहरियों का प्रत्यक्ष प्रभाव आज भी देखा और अनुभव किया जा सकता है।

अन्तः संवेदनाओं को उभारने में कला, साहित्य, भाषण, उद्बोधन की अपेक्षा संगीत कहीं अधिक समर्थ है। इसकी पहुँच अन्तःकरण के मर्मस्थल तक है। मनुष्य तो क्या पशुपक्षी तक संगीत की सुमधुर ध्वनि पर थिरकने लगते हैं तथा उस प्रभाव से प्रकृति प्रदत्त स्वभाव के विपरीत आचरण करते देखे जाते हैं। इतिहास की प्रख्यात घटना है कि मुगल शासक अकबर किसी कारण से तत्कालीन प्रसिद्ध लोक कवि माघ से क्रुद्ध हो गया था। आवेश की स्थिति में उसने सेनापति को आदेश दिया कि महाकवि को दूसरे दिन भरे दरबार के सामने मदमस्त हाथी से कुचलवा दिया जाय। सभासदों को राजनिर्णय अनुचित जान पड़ा। पर विरोध कौन करता और स्वयं के लिए आपत्ति मोल लेता। महाकवि को इस तरह मत्युदण्ड देना भी उन्हें उचित नहीं लगा क्योंकि वे बेगुनाह थे। महामंत्री सहित सभासदों की एक गुप्त सभा राजा की अनुपस्थित में हुई। लम्बे विचार विमर्श के बाद आम सहमति हुई कि संगीत सम्राट तानसेन की मदद ली जाय। योजना गुप्त रखी गई तथा यह निश्चय हुआ कि जिस समय क्रुद्ध हाथी माघ को मारने के लिए छूटे, ठीक उसी समय तानसेन अपनी संगीत लहरी छेड़ें।

निर्धारित समय पर दूसरे दिन हाथी हुँकार भरता माघ को मारने चला। इसी बीच विलक्षण घटना घटी। तबले के ध्रुपदताल की तरंगित ध्वनि लहरी ने हाथी को सम्मोहित कर दिया। बढ़ते हुए उसके कदम रुक गये। वह उसी स्थान पर शराबी की भाँति झूमने और नृत्य करने लगा। आयेदर्शक भी मंत्रमुग्ध बने इस अविश्वसनीय दृश्य को देख रहे थे। जब तक संगीत चलता रहा हाथी अपने स्थान से टस से मस नहीं हुआ। अकबर को पूरी बात मालुम हुई। साथ ही अपने गलत निर्णय का भान भी हुआ। संगीत की चमत्कारी शक्ति के कारण पागल हाथी से महान कवि की रक्षा हुई।

बैजू बाबरा के सम्बन्ध में विख्यात है कि जब वह रागिनियाँ छेड़ते थे, तो तपती धूप में भी घने बादल आकाश में मँडराने लगते और वर्षा आरंभ हो जाती थी। दीपक राग की उच्चस्तरीय सिद्धि के अभ्यास से बुझे हुए दीपकों को भी अपने आप जल उठना होता था। अब तो वे घटनायें मात्र किम्वदन्ती भर बनकर रह गयी हैं। ऐसे नादयोग के साधक अब कहाँ मिलते हैं? तो भी संगीत की शक्ति का अस्तित्व भले-बुरे रूपों में एक शक्ति के रूप में आज भी संसार में विद्यमान है।

जनमानस में भली-बुरी प्रेरणाएँ भरने-भावनायें उभारने का यह सबसे सशक्त मनोवैज्ञानिक माध्यम है। संगीत का सदुपयोग जहाँ एक ओर नवनिर्माण के आधार खड़ा करता है, वहीं दूसरी ओर इसका दुरुपयोग ध्वंसात्मकता आक्रामकता जैसी पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों को जन्म देता है। इन दिनों प्रायः यही हो भी रहा है। पश्चिमी देशों में कुत्सित भावना को भड़काने वाला संगीत ही लोकप्रिय हुआ है जिसने युवा पीढ़ी को उच्छृंखल, स्वेच्छाचारी बनाने में विशेष भूमिका निभाई है। इस प्रकार के उत्तेजक संगीत का आविष्कार विलहेले नामक एक अमेरिकी संगीतज्ञ ने तीस वर्ष पूर्व किया था पॉप-पॉप की तीव्र ध्वनि के कारण यह संगीत

'पॉप संगीत ' के नाम से विख्यात हुआ जिसकी आज सर्वत्र धूम मची है । इसका वास्तविक नाम है "बैवोपालु पॉप" ।

इस श्रृंखला में कितनी ही अश्लील कड़ियाँ जुड़ती जा रही हैं । 'रॉक एण्ड रॉल तथा डिस्को जैसे कितने ही नृत्य सम्मिलित संगीत का आविष्कार हुआ है । इसके आविष्कारक एल्विस प्रेस्ले को इस क्षेत्र में भारी सफलता मिली जिसमें युवावर्ग अपनी सुध-बुध खोकर स्वच्छन्द आचरण, वीभत्स चेष्टायें करते हुए नृत्य करने लगे । इससे उत्साहित होकर प्रेस्ले ने शब्द विज्ञान का विशद अध्ययन कर संगीत के साथ उसके उत्तेजक प्रभावों का परिचय प्राप्त किया और पॉप संगीत की रचना की । संगीत शास्त्र के विशेषज्ञों का कहना है कि रॉक एण्ड रॉल पर उच्चारित ध्वनि 'ऊ ऊ ऊ' की कराहें सुनने वालों में यौन भावना को असाधारण रूप से बढ़ा देती हैं । इसमें ड्रम आदि को पीट-पीट कर गला फाड़ कर चिल्लाने लगना तथा फूहड़ ढंग से कूल्हे मटकाने जैसा क्रम और जुड़ गया जिसने पॉप को जन्म दिया । इस संगीत ने स्वेच्छाचार को अत्यधिक बढ़ावा दिया ।

पाश्चात्य देशों में शरीर और मन में उत्तेजना भरने वाले इस प्रकार के संगीत की इन दिनों सर्वत्र धूम है । अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों का कहना है कि सौम्य सुमधुर संगीत की स्वर लहरियाँ जहाँ शरीर, मन और आत्मा के विकास में सहायक होती हैं, वहीं इस तरह दुरुपयोग चल पड़ने पर संगीत अधःपतन का कारण बन सकता है । उत्तेजक ध्वनि तरंगों का प्रवाह अगणित समस्याओं को जन्म दे सकता है ।

पिछले दिनों पेरिस में एक ऐसा ही उदाहरण सामने आया जहाँ का ओलम्पिया म्यूजिक हाल श्रोताओं से खचाखच भरा था । संगीत का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ । मधुर स्वरलहरी के मादक प्रभाव से श्रोतागण झूमने लगे । अचानक एक विलक्षण घटना घटी । संगीत की धुन बदली । म्यूजिक कार्यक्रम में उस धुन को बजाये जाने का वह पहला अवसर था । शान्तचित्त दर्शक जो संगीत प्रोग्राम को सुनने में तल्लीन थे, उस परिवर्तित धुन को सुनकर बेचैनी अनुभव करने लगे । उनकी उत्तेजना बढ़ती ही गयी और अनियंत्रण की स्थिति में जा पहुँची । पागलों की तरह श्रोता अपनी-अपनी कुर्सियों को छोड़कर एक दूसरे से संघर्ष पर उतारू हो गये । हॉल की कुर्सियाँ उनने तोड़- फोड़ डालीं और खिड़कियों में लगे शीशे चकनाचूर कर दिये । संगीत सुन रही महिलाएँ भी अपना मनःसंतुलन खो बैठीं और उत्तेजना की स्थिति में स्वयं अपने वस्त्र फाड़ने-चीड़ने लगी । निर्वस्त्र अवस्था में उनके चीखने-चिल्लाने से हॉल गूँज उठा । देखते ही देखते वहाँ अच्छा खासा हंगामा खड़ा हो गया । आक्रामक आचरण के कारण अधिकांश व्यक्ति घायल हो गये । संगीत आयोजकों को बिगड़ती हालत पर काबू पाने के लिए मदद के लिए पुलिस बुलानी पड़ी । तब कहीं जाकर स्थिति पर नियंत्रण पाया जा सका । घायलों को अस्पताल की शरण लेनी पड़ी ।

घटना के कारणों की खोजबीन आरंभ हुई । जाँच पड़ताल के दौरान संगीत की धुन की भी परीक्षा की गयी तो मालूम हुआ कि सारी घटनाओं के लिए जिम्मेदार वह उत्तेजक धुन थी जो पहली बार प्रयोग के तौर पर बजायी गयी थी । रॉक एण्ड पॉप के सम्मिलित स्वरूप से बनी उस संगीत धुन को बजाने पर शासन द्वारा पाबन्दी लगा दी गई ।

ध्वनि विज्ञान के विशेषज्ञों ने अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि मनुष्य के स्नायु संस्थान को असाधारण रूप से उत्तेजित करने में ऐसी धुनें पूर्ण समर्थ हैं । जिस पिच और फ्रीक्वेन्सी पर वह धुन तैयार की गयी थी, वह मानवी मस्तिष्क पर भारी दुष्प्रभाव डालती है । आक्रामक एवं कामुक मनोवृत्ति को भड़काने में वह विशेष रूप से सहायक है । इस घटना से वैज्ञानिकों को संगीत विद्या पर गहन अनुसंधान करने की प्रेरणा मिली । तालबद्ध, लयबद्ध अनेकानेक ध्वनियों एवं धुनों का प्रयोग परीक्षण किया गया तो विदित हुआ कि उनमें दोनों तरह की सामर्थ्य विद्यमान है ,

संगीत आदिकाल से ही मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है और अपनी सुमधुर तरंगों द्वारा मानसिक तुष्टि का लक्ष्य पूरा करता रहा है । संगीत की शक्ति का नियोजन जनमानस की कुत्सा भड़काने, मानसिक असन्तुलन पैदा करने का कारण बन सकता है जबकि शारीरिक स्वास्थ्य एवं मनः विकास का श्रेष्ठतम् साधन वह है ही । ताल लय के उतार चढ़ाव, फ्रिक्वेन्सी तथा धुन में परिवर्तन करके संगीत द्वारा रचनात्मक और ध्वंसात्मक दोनों ही तरह के प्रयोजन पूरे किये जा सकते हैं । इसकी स्वस्थ परम्परा ही मानवी क्षमताओं के विकास में सहायक है । ✻

आत्मिकी को अग्नि परीक्षा से गुजरना होगा

तर्क एवं प्रमाण की अपनी उपयोगिता है। विज्ञान ने अपना सतत् विकास इसी आधार पर किया है। परीक्षण की कसौटियों पर कसने के बाद उसने अपना कर्त्तव्य सिद्ध किया है। उसकी प्रत्यक्षवादी मान्यतायें परीक्षण किये जाने के बाद ही अपनी प्रामाणिकता प्रस्तुत कर सकी हैं। धर्मतंत्र को आत्मिकी को भी प्रत्यक्षवाद ने चुनौती दी है कि परीक्षण की कसौटियों पर अपनी उपयोगिता सिद्ध करे।

इसे समय का दुर्भाग्य कहा जाना चाहिए कि धर्म ने लौकिक ज्ञान तर्कशास्त्र से अपने को सिद्ध करना अस्वीकार किया। किसी समय मनुष्य की आस्था इतनी प्रगाढ़ एवं भावनाएँ इतनी उदात्त रहीं होंगी कि शास्त्रों, महापुरुषों के वचनों में तर्क करने की आवश्यकता नहीं अनुभव की जाती रही होगी। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में मनुष्य की विचारणा, भावना एवं मनःस्थिति में भारी अन्तर आया है। बुद्धि का असाधारण विकास हुआ है। जिज्ञासा एवं तर्क शक्ति बढ़ी है। फलस्वरूप मानवी आस्था में कमी आयी है। बुद्धिवाद धर्म के सिद्धान्तों को बिना परखे, तर्क एवं परीक्षण की कसौटी पर बना कसे स्वीकार करने को तैयार नही है। धर्म को भी अब उसी बुद्धि, तर्क से प्रामाणिक और उपयोगी सिद्ध करने की आवश्यकता आ पड़ी है जिससे विज्ञान अपने प्रतिपादनों को सिद्ध करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"मेरा अपना विश्वास है कि बाह्यज्ञान—विज्ञान के क्षेत्र में जिन अन्वेषण पद्धतियों का प्रयोग होता है, उन्हें धर्म क्षेत्र में अध्यात्म में भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए। यह कार्य जितना शीघ्र हो उतना ही अच्छा। यदि कोई धर्म इन अन्वेषणों से ध्वंस हो जाय तो समझना चाहिए कि वह निरर्थक था। ऐसा धर्म जो तर्क, प्रमाण एवं उपयोगिता की दृष्टि से खरा न उतरे, उसका लुप्त हो जाना स्वाभाविक घटना होगी। इस अनुसंधान के फलस्वरूप सारा मल धुल जायेगा तथा धर्म के उपयोगी तत्व अपनी प्रखरता के साथ सामने आयेंगे।

मनीषियों का कहना है कि जो धर्म बौद्धिक अन्वेषण की उपयोगिता से इन्कार करते हैं वे वस्तुतः आत्म विरोधी हैं। उनकी क्रिया प्रणाली कितनी भी सशक्त क्यों न हो, उपयोगिता के अभाव में कालान्तर में संदिग्ध बन जायेंगे। शास्त्रों, आप्त वचनों के दुहराने एवं कर्म काण्डों की लकीरें पीटने मात्र से उनका महत्व नहीं बढ़ पायेगा, वरन् मनुष्य की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने से ही वे उपयोगी एवं प्रामाणिक बन सकते हैं। धर्म का मूलतत्व ग्रंथों, कर्मकाण्डों से परे है जो परीक्षण एवं अनुभूतिगम्य है। उसका अन्वेषण आज की परिस्थितियों में किया जाना अति आवश्यक है। इस सार्वभौम तत्व की सनातन गरिमा को प्रामाणित करना ही अन्वेषण का उद्देश्य है। बुद्धि का सदुपयोग इस दिशा में होना ही चाहिए।

धर्म की अध्यात्म की उपलब्धियाँ हैं—श्रेष्ठ व्यक्तित्व एवं आदर्श कर्तृत्व। जो धर्म मानवी व्यक्तित्व के विकास में अपना योगदान दे, वही अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। व्यावहारिक जीवन की समस्याओं का समाधान उसमें होना ही चाहिए। क्यों, किसलिए का समाधान उसे प्रस्तुत करना चाहिए। आज का प्रत्यक्षवाद को ही सब कुछ मानने वाला विचारशीलवर्ग कर्म काण्डों की लकीर को अपनाने को तैयार नहीं इसलिए उन कर्मकाण्डों में जीवन परिष्कार का वह दर्शन जुड़ा रहना अति आवश्यक है जिसकी फल श्रुति मनुष्य में देवत्व के उदय के रूप में सामने आती है। इसके अभाव में तो कलेवर विकृति ही खड़ा करेंगे, धर्म की गरिमा को गिरायेंगे।

धर्म का प्रमाण किसी ग्रन्थ की रचना पर नहीं वरन् सत्यता पर आधारित है। ग्रंथ मानवी रचना के बाह्य परिणाम हैं जो सार्वभौम सत्ता एवं प्राणिमात्र की एकता का प्रतिपादन करते हैं। मनुष्य उनका प्रणेता है। बुद्धि भी मानव संरचना का ही परिणाम है। बुद्धि की शरण में न्याय के लिए जाना होगा। उसका उत्तरदायित्व है कि वह प्रचलनों के कारण एवं उद्देश्य की व्याख्या करके व्यक्ति को समाधान और संतोष प्रदान करे। उसी शाश्वत प्रयास को अन्वेषण कहते हैं। जब कोई घटना घटित होती है तो उसे देखकर

असमंजस होता है, पर यदि यह विश्वास हो जाय कि यह घटना अमुक नियम का परिणाम थी तो समाधान हो जाता है। पेड़ से सेव गिरा। न्यूटन की बुद्धि आविष्कार के लिए प्रवृत्त हुई। फल स्वरूप पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। इस सार्वभौम सिद्धान्त को सबने स्वीकार किया। अन्वेषण की इस पद्धति को धर्म क्षेत्र में भी प्रयुक्त करना होगा।

विज्ञान की मान्यता है कि किसी वस्तु की व्याख्या स्वयं उसकी प्रकृति में निहित है। इसी कारण वह वस्तु के स्वरूप को जानने के लिए प्रयोग परीक्षण करता है। पदार्थ सत्ता के स्वरूप को जानने के लिए परमाणु रचना को देखना, जांचना होता है। इस मान्यता के अनुसार सृष्टि में घटित होने वाली घटनाओं की व्याख्या किसी बाह्य सत्ता एवं शक्ति पर आश्रित नहीं है, वरन् उसकी प्रकृति में सन्निहित है। रसायनशास्त्री अपने तथ्यों का प्रतिपादन करने में दैत्य, भूत अथवा बाहरी शक्ति की आवश्यकता नहीं अनुभव करता। विज्ञान के इस सिद्धान्त का प्रयोग धर्म क्षेत्र में भी करना होगा। उसे सिद्धान्तों-मान्यताओं की उपयोगिता की कसौटी पर कसना होगा। परोक्ष में, जीवनोपरान्त धर्माचरण का लाभ मिलेगा या नहीं, बुद्धिवाद इस प्रश्न पर विचार करने को तैयार नहीं है। प्रत्यक्ष में इसी जीवन में धर्म को अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी होगी।

विज्ञान अपनी व्याख्याएँ वस्तु सत्ता के भीतर से करता है, जबकि धर्म ऐसा करने में पिछले दिनों असमर्थ रहा है। आवश्यकता आ पड़ी है कि धर्म या अध्यात्म भी इस पद्धति को अपनाये तथा अपनी महत्ता को अपने भीतर से सिद्ध करे। विश्व से पूर्णतया पृथक् ईश्वर की सत्ता एक प्राचीन मान्यता है। ऐसे ईश्वर की सत्ता को जो विश्व से पृथक् है, बुद्धिवाद, उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद स्वीकार करने में असमर्थ है तो उसे मानवी जीवन के निकट उपयोगी बनकर रहना चाहिए। जीवनक्रम की श्रेष्ठता के रूप में परिलक्षित होना चाहिए। उसे श्रेष्ठ व्यक्तित्व के रूप में फलित-परिणत होना चाहिए।

इन कसौटियों पर कसे जाने एवं अनुसंधान पर खरा उतरने पर ही धर्म जीवन्त बना रहा सकता है, अन्यथा बुद्धिवाद उसे आसानी से स्वीकार नहीं करेगा उलटे उस पर प्रहार करेगा। अनुसंधान की उपेक्षा करके देवी-देवताओं की मान्यता से चिपके रहने से धर्म की उपयोगिता संदिग्ध बनी रहेगी।

वस्तु की व्याख्या उसकी प्रकृति में निहित है, भारतीय दर्शन भी पूर्ण रूप से इस सिद्धान्त का समर्थन करता है। ब्रह्म या वेदान्त के ईश्वर से बाहर कुछ भी नहीं है। 'यह सब वही है' सर्वखिल्विदं ब्रह्म' अर्थात् विश्व-ब्रह्माण्ड में उसकी ही सत्ता है। वह स्वयं विश्व ही है। उसी को हम देखते और अनुभव करते हैं। उसी में हमारी जीवनगति और हमारी सत्ता है। विश्व में अनतर्व्याप्त ईश्वर की समस्त वस्तु सारे तत्व की एवं सर्वत्र अन्तर्यामी होने का भाव भी यही है। वह जगत के साथ में अपने को व्यक्त कर रहा है। जड़ चेतन उसकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं। मनुष्य, देव मानव, मानव-पशु, पौधे आदि के बीच जो विभेद दिखाई देता है वह तत्व की दृष्टि से नहीं परिमाण की दृष्टि से है। महान् देव से लेकर सूक्ष्मकण तक सभी उसी परम चेतना के असीम सागर की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस सिद्धान्त की व्याख्या के लिए किन्हीं बाह्य कारणों को ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं, वरन् उसकी प्रकृति में ही जाना होगा।

> ***आत्म विश्वास जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है। आत्म विश्वासी कभी हारता नहीं। कभी थकता नहीं। कभी गिरता नहीं। कभी मरता नहीं।***

इसके लिए धर्म की मान्यताओं को विवेक के, विज्ञान के न्यायालय में प्रस्तुत करना होगा, तर्क एवं उपयोगिता की कसौटी पर कस कर उन सिद्धान्तों को अपनाना होगा जो जीवन के परिष्कार एवं उत्थान में अपना योगदान देते हों। मनुष्य -मनुष्य के बीच प्राणिमात्र के बीच स्नेह-सद्भाव उत्पन्न करते हों। समाज की अन्यान्य अगणित समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हों। तर्क एवं परीक्षण की इन कसौटियों पर खरा उतरने के उपरान्त ही धर्म, दर्शन या अध्यात्म बुद्धिग्राह्य हो सकता है। वर्तमान परिस्थितियों में जबकि व्यक्तित्व के विकास के सारे प्रयत्न असफल हो रहे हैं, धर्म तत्व को आगे बढ़कर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करनी होगी, पर यह तभी संभव हो सकता है जब वह परीक्षण की भट्टी में अपने को निर्भीकतापूर्वक प्रस्तुत करे। भौतिकी ने जिन आधारों पर अपने को प्रामाणिक ठहराया है, उन्हीं आधारों पर आत्मिकी को भी प्रामाणिक एवं उपयोगी सिद्ध करना होगा। समय की इस मांग को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। *

महामानवों की मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक "एनाटॉमी"

मनःस्थिति परिस्थितियों की जन्मदात्री है । मनुष्य के सुख दुःख, विकास अथवा पतन के लिए मुख्यतः वही जिम्मेदार है । परिस्थितियों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता तो है पर मनुष्य की प्रगति अवगति में उनकी नगण्य भूमिका है । मूलतः कारण आन्तरिक स्थिति ही होती है । मन की विलक्षण सामर्थ्य और सम्भावनाओं को देखकर ही ऋषियों ने उसे व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष घटकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना था तथा यहाँ तक कहा था कि मनुष्य का मन ही उसके बन्धन अथवा मुक्ति का कारण है ।

प्रगति की आकांक्षा रखने तथा महानता का मार्ग चयन करने वालों को सर्व प्रथम मन को ही समझाना संभालना तथा सुधारना पड़ता है । अनगढ़ रहने पर वह अड़ियल घोड़े की तरह परेशान करता तथा विकास का मार्ग अवरुद्ध करता है । सुगढ़ता प्राप्त करते ही वह सधे घोड़े के समान सवारी ढोने भार लादने की तरह इच्छाओं आकाक्षांओं का सही नियोजन तथा पूर्ण मनोयोग का परिचय देकर अनेकों प्रकार का सहयोग देता है । उसका स्तर निकृष्ट हो तो पतन पराभव का मार्ग स्वयमेव ही खुल जाता है । अनियन्त्रित निरुद्देश्य इच्छाएँ हवा के साथ उड़ने वाले तिनकों की भाँति भटकती रहती हैं । उनसे कोई विशेष प्रयोजन पूरा नहीं हो पाता ।

श्रेयस् का पथ अपनाने तथा महानता का वरण करने की जिन्हें आकांक्षा है, उन्हें साधनात्मक प्रयत्न करना जितना आवश्यक है उतना ही जरूरी यह भी है कि मन को सही दिशा दें । इच्छाओं-आकाक्षांओं का सही स्वरूप समझें ताकि उनमें से उचित का ही वरण कर सकें । श्रेयस् के पथिक को लक्ष्य ही नहीं अपने चिन्तन का स्वरूप भी निर्धारित करना पड़ता है । कारण कि उत्कृष्ट जीवन की ओर चलने में सर्वाधिक सहायक अथवा बाधक अपना चिन्तन एवम् दृष्टिकोण ही होता है ।

फ्रायड से अलग हटकर मनुष्य के विकास की असीम संभावनाओं पर दृढ़ विश्वास रखने वाले मनःशास्त्री अब्राहम मैस्लो का कहना है कि व्यक्तित्व विकास के लिए एक विशिष्ठ तरह की चिन्तन पद्धति भी अपनानी पड़ती है । मैस्लो ने परमार्थ परायण महापुरुषों के चिन्तन एवम् दृष्टिकोण का मनःशास्त्र के आधार पर विश्लेषण किया है । उन्होंने उस आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं वे अति उपयोगी तथा हर व्यक्ति का मार्ग दर्शन करने में सक्षम हैं ।

मैस्लो के अनुसार श्रेष्ठ व्यक्ति सहज स्वभाव के होते हैं । उनमें कृत्रिमता का अभाव पाया जाता है । बाहर और भीतर से एक जैसे होते हैं । उनकी भावना विचारणा एवम् क्रिया तीनों ही में एक रूपता पायी जाती है । जैसा विचार करते हैं हृदय में वैसे ही भाव उठते हैं तथा व्यवहार में उसी स्तर के कृत्य करते हैं । उनका स्वभाव स्वतन्त्र होता है उनकी बुद्धि प्रगतशीलता की, श्रेष्ठ प्रयोजनों की पक्षधर होती है । इसका अर्थ मर्यादाहीन होना कदापि नहीं है । इस स्वतन्त्रता का अभिप्राय कुरीतियों एवम् रूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त हो दूसरों को वैसा ही बनाने में सहायक सिद्ध होना है । विचारों की संकीर्णता भी उन्हें नहीं रुचती । नित नए प्रगतिशील विचारों का आव्हान करना उनकी विशेषता होती है । समाज एवम् देश को वे उपयोगी विचार देते हैं साथ ही अनुपयोगी के खण्डन में भी वे पीछे नहीं रहते । मौलिकता उनमें कूट-कूट कर भरी होती है । अन्धानुकरण को वे पिछड़ापन का चिन्ह मानते तथा उससे सदा बचते हैं । अपनी राह स्वयं बनाते तथा बिना किसी की परवाह किए चल पड़ते हैं । अपने मार्ग में आने वाले संघर्षों से विचलित होना उन्हें नहीं भाता ।

इस मनःशास्त्री के अनुसार ऐसे व्यक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समस्याओं को सर्वोपरि मानते तथा उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जिनमें समाज, देश एवमं जाति का हित जुड़ा हो । उनका अहम् विराट में विसर्जित हो जाता है । अपने "स्व" तथा उससे जुड़ी कामनाओं पर उनका कड़ा अंकुश रहता है । प्रसिद्ध विचारक कैप्टन शोटोवर का कहना था कि "हमारी संसार में रुचि तभी होती है, जब हमारी रुचि स्वयं से परितृप्त होकर बाहर निकलने लगे ।" प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि अपनी इच्छाओं को विगलित किए बिना समाज एवम संसार की सेवा सम्भव नहीं ।

मैस्लो की अवधारणा है कि सभी परमार्थी रचनात्मक प्रवृत्ति के होते हैं। उनमें कलात्मक वैचारिक तथा वैज्ञानिक स्तर की विशिष्टताएँ समायी रहती हैं। यही कारण कि उनके जीवन में एकरूपता का अभाव नहीं होता। एक ही वस्तु को सदा नए –नए रूप में देखते रहने से उसमें नयापन भासित होता है। जबकि सामान्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण में यह विशिष्टता नहीं पायी जाती।

"न्यू पाथवेज इन साइकालॉजी" के रचनाकार कोलिन विल्सन ने अपनी पुस्तक में मैस्लो के चिन्तन का निष्कर्ष दिया है।"सामान्य लोगों की तुलना में महामानवों का अधिक प्रसन्नचित्त एवम् प्रफुल्लित रहना उनकी सन्तुलित एवम् परिष्कृत दृष्टिकोण का परिणाम है। ऐसे व्यक्ति वास्तविक अवास्तविक में विभेद करने तथा औचित्य को ग्रहण करने में परिपूर्ण सक्षमता रखते हैं। ऐसी समर्थ ग्राह्य क्षमता उनमें हर क्षेत्र में विद्यमान होती है।

इसी पुस्तक में मैस्लो का कथन है कि स्नेह सौजन्य की भावना अपेक्षाकृत अन्य लोगों के महापुरुषों में अधिक होती है। उनका अन्तराल स्नेह प्रेम करुणा, दया से लबालब रहता है। उनके पास न तो वैर फटकता है न ही घृणा। एकान्त एवमं शांति प्रिय स्वभाव के ये पुरुष सामाजिक एवम् नैतिक मर्यादाओं का पालन करते तथा सहन शक्ति एवम् सामञ्जस्य की प्रवृत्ति अपनाते हैं। उनके स्वभाव में उथलापन, दूसरों की निन्दा उपहास का दोष नहीं पाया जाता। उनका स्वभाव दूसरों को उठाने का होता है, गिराने का नहीं। चिन्ता भय, परेशानी, संकटों की कंटकाकीर्ण परिस्थितियों के मध्य भी उनका धैर्य एवम् संतुलन लुप्त नहीं होता। चिन्तन की धारा निषेध की उल्टी तरफ न बहकर विधेयात्मक मार्ग अपनाती है।

मनःशास्त्र के अध्येता मैस्लो ने सिगमण्ड फ्रायड की इस मान्यता का भी खण्डन किया है कि प्रत्येक मनुष्य की गतिविधियाँ यौन अभिप्रेरित हैं। उनका मानना है कि संसार में ऐसे अनेकों सन्त महापुरुष हुए हैं जिनका आचरण यौन प्रवृत्ति से पूर्णतया ऊपर उठा हुआ था। उनका यौन प्रवृत्ति पर पूर्ण नियन्त्रण था। वे किसी ऊँचे लक्ष्य से प्रेरणा एवम् शक्ति प्राप्त करते थे। सुप्रसिद्ध मनःशास्त्री गोल्डस्टीन मैक डगल तथा कार्ल गुस्तेव जुंग ने भी मैस्लो की इस धारणा का समर्थन करते हुए कहा है सेक्स से इतर भी श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ मनुष्य में पायी जाती हैं। समाज देश एवम् संस्कृति के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने वाले त्यागी बलिदानी महापुरुषों का जीवन चरित्र इस बात का साक्षी है। स्नेह प्यार का उच्चस्तरीय आदर्शों के प्रति अटूट निष्ठा का विलक्षण सैलाब उनके हृदय में उमड़ता देखा गया है। देश की बलिवेदी पर मर मिटने वाले बलिदानियों, समाज के उत्थान के लिए जीवन होम देने वाले समाज सेवियों अविष्कार में एकनिष्ठ होकर जुटे वैज्ञानिकों की प्रेरक शक्ति सेक्स नहीं अपितु वह महानता होती है जो उनके भीतर से प्रस्फुटित होती तथा कुछ विशेष प्रचलित ढर्रे से अलग हटकर कुछ करने को अभिप्रेरित करती है।

मनोविज्ञान के आधार पर समाज के नवनिर्माण की विचारधारा अब्राहम मैस्लो ने अपनी पुस्तक "यूप साइकियन मैनेजमेन्ट" में व्यक्त की है। प्रगतिशील विचार के समर्थकों ने इस पुस्तक की तुलना अर्थशास्त्र एवम् समाज शास्त्र की मूर्धन्य प्रतिभा कार्ल मार्क्स की सुप्रसिद्ध कृति "ड़ास कैपिटल" से की है। इस पुस्तक में मैस्लो ने महानता का वरण करने के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव भी दिए हैं। उनके अनुसार लक्ष्य निर्धारित कर लेने के उपरान्त मनुष्य को कार्यों में छोटे बड़े का भेद भाव नहीं कर उनका स्तर श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए। प्रायः ऊब, नीरसता, अकर्मण्यता का कारण वह चिन्तन है जिसमें मनुष्य के काम को छोटा मान कर उनमें रस नहीं लेता। सामान्य और असामान्य व्यक्तियों में मौलिक अन्तर यह पाया जाता है कि सामान्य व्यक्ति जिस काम को छोटा मानकर उपेक्षा कर देते अथवा उसे करने में मनोयोग का परिचय नहीं देते महापुरुष उनमें भी पूरी तल्लीनता मनोयोग से जुटे दिखाई पड़ते हैं। वे काम के प्रतिफल पर नहीं उसके स्तर पर अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। यह असाधारण मनोयोग ही अन्ततः श्रेष्ठ परिणामों का भी कारण बनता है।

मूर्धन्य मनःशास्त्री मेस्लो ने उपयुक्त विचारों में महानता के सिद्धान्तों एवमं महापुरुषों की जिन विशिष्टताओं को निरूपित किया है वे शाश्वत हैं। आध्यात्मवेत्ता भी इसी जीवनदर्शन का समर्थन विविध माध्यमों से समय–समय पर करते देखे जाते हैं। इन्हें चर्चा, श्रवण, अध्ययन तक सीमित न रखकर सचमुच आचरण व्यवहार में उतारने के लिए कटिबद्ध हुआ जा सके तो देखते ही देखते समान्य मानव से महामानव की स्थिति में जा पहुँचने का सौभाग्य इसी जीवन में हर किसी को मिल सकता है। *

अध्यात्म क्षेत्र की त्रिवेणी, अनुदानों की जननी

ज्ञान , भक्ति और कर्म—अध्यात्म क्षेत्र की तीन प्रमुख धारायें हैं । समग्र आत्मिक प्रगति के लिए तीनों में सन्तुलन एवं समन्वय होना अनिवार्य है । यह तीनों ही धारायें परस्पर उसी प्रकार गुंथी हुई हैं जिस प्रकार काया के प्रमुख घटक शरीर, मस्तिष्क और हृदय । ऊर्जा शक्ति शरीर की उपज मानी जाती है तो बुद्धि मस्तिष्क की एवं भाव-संवेदनाएँ हृदय की । इन तीनों में से कोई भी एक कार्य करना बंद कर दे तो सारी जीवन प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जायेगी । शरीर कितना ही बलिष्ठ स्वस्थ एवं सुगठित क्यों न हो, विचार एवं भावना शून्य हो तो किसी काम का नहीं रहता । इसी तरह विचार कितने भी सशक्त और प्रभावशाली क्यों न हों, जब तक उनमें संवेदनशीलता न जुड़ी हो कल्याणकारी नहीं हो सकते । शून्य भावनाओं से रहित महानज्ञानी तत्वदर्शी किस काम का ? उसका ज्ञान तो पुस्तकों, ग्रन्थों एवं शास्त्रों जैसा नीरस एवं निष्प्राण होगा ।

एकांगी भावनायें भी उतनी उपयोगी सिद्ध नहीं होतीं । विचारों से शून्य भावनाओं के अतिरेक में बहता हुआ हृदय भी वैज्ञानिक दृष्टि से हानिकारक है । एक से काम चलता होता तो भावनाओं के केन्द्र हृदय एवं विचारों के केन्द्र मस्तिष्क को परमात्मा प्राण ऊर्जा से परे एक ही शरीर में क्यों संजोता ? यह इस बात का प्रमाण है कि भाव संवेदनाओं अर्थात् भक्ति के साथ विचारों की, ज्ञान की भी उतनी ही उपयोगिता एवं महत्ता है । कर्म तो इन दोनों के बीच की सबसे बड़ी इकाई है जिसके बिना कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । परिणाम तक पहुँचने के लिए क्रियाशील बनना पड़ता है । निष्क्रियों के लिए कुछ कर सकना तो दूर अंग अवयवों का संचालन तक भी नहीं बन पड़ता । संसार में कुछ भी प्राप्त करना कर्म के आधार पर ही बन पड़ता है । आवश्यकता तीनों में समन्वय की है ।

प्रचलित मान्यता है कि तीनों ही धारायें परस्पर विरोधी हैं । इनमें समन्वय नहीं है । कर्मयोगी कर्म को, जिम्मेदारियों को ही सब कुछ मान बैठता है तो ज्ञानमार्गी दर्शन में विश्वास करता है । तत्वदर्शन ही उसका लक्ष्य होता है । भक्ति मार्ग का अनुयायी भक्ति भावना में अपने को तन्मय रखना चाहता है, दर्शन के रूखेपन में उसे रस नहीं आता । फलतः तत्वदर्शन की बौद्धिक गवेषणाओं में वह अपना समय और श्रम नहीं गँवाता । भाव समुद्र में डूबे रहना ही उसे अच्छा लगता है । वस्तुतः यह मानवी चिन्तन की सबसे बड़ी कमी रही है कि इन तीनों धाराओं को अलग-अलग समझा गया, जबकि ये सभी अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । इन्हें अलग कर देने से ही समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं और साधकों को अध्यात्म मार्ग की महान उपलब्धियों से वंचित रहना पड़ता है । समुचित लाभ तो तीनों ही अनिवार्य पक्षों को समान रूप से अपनाने से ही मिल पाता है ।

इस तथ्य को जानने के लिए इतिहास का पर्यवेक्षण, अध्ययन करना होगा । संसार भर में जितने भी महान अध्यात्मवादी महापुरुष, सन्त, महात्मा, ऋषि हुए हैं, वे इन तीनों ही विशेषताओं से पूर्णतया भरपूर थे । उनके हृदयों में जहाँ भाव-संवेदानाओं की-करुणा की धारायें बहती थीं, वहीं विवेक से ज्ञान का प्रवाह फूटता था । ज्ञान एवं भक्ति से बुद्धि और भावना, सम्पदा से वे समस्त विश्व को सिक्त एवं तृप्त करते थे । परस्पर गुंथी हुई दोनों धाराओं का अवगाहन-अवधारण करके ही वे उच्चस्तरीय कर्मों में संलग्न रह सके । लोक मंगल को प्रमुखता देते हुए समाज सेवा में निरत रह सके । ज्ञान, कर्म और भक्ति की तीनों धारायें मिलकर किस प्रकार समग्र अध्यात्म का स्वरूप बन सकती हैं, इसके लिए विश्व के महानतम् अध्यात्मवादियों पर दृष्टिपात करना होगा ।

दर्शन के महान तत्ववेत्ता के रूप में शंकराचार्य का नाम प्रख्यात एवं प्रतिष्ठित है । उनका वेदान्त दर्शन अद्वितीय एवं दुनिया के सभी दर्शनों में समग्र एवं श्रेष्ठ है । ब्रह्म विद्या का इतना सशक्त प्रतिपादन अत्यन्त दुर्लभ है । दर्शन के मूर्धन्य ज्ञाता होते हुए भी उनका हृदय उदात्त भाव संवेदनाओं से लबालब भरा था । उसमें से भक्ति की तरंगें उद्वेलित होती थीं । सौन्दर्य लहरी ग्रंथ का सृजन इस भक्ति भाव के प्रस्फुटन का ही परिचायक है । भारतीय एकता एवं अखण्डता के लिए जहाँ उन्होंने देश के चार कोनों में चारों धामों की स्थापना कर जन जाग्रत का शंखनाद फूँका, वहीं ज्ञान के अविरल स्रोत वेदान्त के प्रचार के साथ भक्ति की अविच्छिन्न धारा के भी साथ में जोड़े रखा । फलतः भक्ति का अवलम्बन पाकर ही वेदान्त सरस एवं ग्राह्य बन सका ।

विश्वभर में वेदान्त की पताका फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द का जीवन भक्ति रस से सिक्त था । महान कर्मयोगी की भाँति लोक आराधना में वे सतत् निरत रहे । उनकी ज्ञान की प्रखरता ने भारतीय संस्कृति को विश्वभर में प्रतिष्ठित किया । इसके पूर्व विदेशों में भारत के प्रति मान्यता दूसरी थी । इसे मात्र अन्धविश्वासों में जकड़ा, धर्म के नाम पर मूर्ति पूजक देश के रूप में समझा जाता था । आदिकाल से मनुष्य जाति को सिक्त करते चले आ रहे भारतीय दर्शन का स्पष्ट स्वरूप उनने विदेशों में रखा तत्ववेत्ता–दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में यह उनका एक स्वरूप था । दूसरा पक्ष भी था माँ काली के समक्ष एक अनन्य भक्त का । काली की प्रतिमा में अपने इष्ट का दर्शन करने वाले अपनी सत्ता को ही भूल जाने वाले विवेकानन्द को कौन भक्ति मार्गी नहीं कहेगा । उनका कथन है कि "दर्शन की शुष्कता एवं नीरसता को भक्ति रस से उठने वाली भाव तरंगें ही दूर कर सकती हैं । मानवी अन्तराल को छू सकने में भाव संवेदनायें ही समर्थ हो सकती हैं ।" अतएव दर्शन के साथ भक्तिभावना को भी विकसित करना उतना ही आवश्यक है । साधना पथ की महान उपलब्धियाँ इन दोनों के समन्वय पर ही अवलम्बित हैं । कर्मयोग इन्हें चिरस्थायित्व प्रदान करता है ।

सन्त इमर्सन प्रख्यात तत्ववेत्ता थे । उनके अगाध ज्ञान ने असंख्यों को प्रेरणा एवं प्रकाश प्रदान किया उनकी उक्तियों के अध्ययन करने पर गहन दार्शनिक विचारों का समावेश मिलता है । तत्ववेत्ता दार्शनिक होते हुए भी उनका जीवनक्रम एक ओर जहाँ भक्तिरस की धाराओं में सदा डूबा रहता था, वहीं वे लोकसेवा में जीवन की सार्थकता समझते थे । वे कहा करते थे कि–"परमात्मा को वही प्राप्त कर सकते हैं जो हृदय के पवित्र हैं । यह पवित्रता सेवा से ही उपलब्ध हो सकती है । करुण हृदय में ही परमात्मा अवतरित होते हैं ।" उपासना, साधना, प्रार्थना–अभ्यर्थना के साथ ही आराधना का भी उनके दैनिक कृत्यों में अनिवार्य रूप से समावेश था ।

इसी तरह प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात का अधिकांश समय लोगों के दुख–दर्दों के निवारण में लगता था । वे कहते थे–"मानव सेवा ही मेरी भक्ति है ।" दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान होते हुए भी भक्ति को उन्होंने अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया । मानव सेवा प्रकारान्तर से भक्ति भावना का ही प्रतीक है ।

कन्फ्यूशियस न केवल विख्यात दार्शनिक –तत्वज्ञानी थे, वरन् ईश्वर भक्ति में उनकी प्रगाढ़ आस्था थी । प्रकृति को वह परमात्मा का स्वरूप मानते थे । अनुपम सौन्दर्य के अवलोकन में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था । वे कहते थे–"देखो ! प्रकृति के भीतर से परमात्मा झाँक रहा है ।" प्रकृति में भावनाओं द्वारा परमात्मा का दर्शन करना भक्तिभावना की पराकाष्ठा है । उनके जीवनक्रम में ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का अद्भुत समन्वय मिलता है ।

फ्रेंच संत ज्यांपाल सात्र प्रकाण्ड विद्वान थे । उनकी दार्शनिक विचारधारा ने बौद्धिक वर्ग को विशेष प्रभावित किया । तत्वज्ञान के मर्मज्ञ होते हुए भी उनका हृदय भक्ति भावना से अभिपूरित था । प्रार्थना में उनकी अगाध श्रद्धा थी । प्रार्थना को वे ईश्वर प्राप्ति एवं लोकसेवा को आत्मिक परिष्कार का सशक्त साधन मानते थे । सेंट आगस्टाइन का मत है कि परमात्मा को बुद्धि द्वारा नहीं पवित्र हृदय द्वारा पाया जा सकता है और हृदय की पवित्रता सेवा साधना से ही आती है । पवित्र हृदय में ही प्रभु का अवतरण होता है । महात्मा बुद्ध, ईसा, महावीर आदि का जीवन भी इसी तथ्य की साक्षी है ।

ये उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि वैदिककाल से लेकर मध्यकालीन एवं आधुनिक काल के संतों, महामानवों के हृदय सरोवर को पवित्र करती हुई ज्ञान, भक्ति एवं कर्म की त्रिवेणी ही अपनी व्यापकता एवं सर्वांगपूर्णता को प्रकट करती रही है । इसे मध्यकाल का अभिशाप समझा जाना चाहिए कि अविच्छिन्न रूप से जुड़ी अविरल रूप में बहती तीनों धाराओं को अलग–अलग करने और प्रवाहित करने का प्रयास किया गया । फलतः दर्शन मात्र वैचारिक उड़ान भर बन कर रह गया । भक्ति ने तर्कों की, तथ्यों की उपेक्षा की फलतः उसमें अन्ध विश्वास एवं पाखण्डों का समावेश हुआ । इस सम्बन्ध में महर्षि अरविन्द का कथन अक्षरशः सत्य है कि –"भक्ति तब तक पूर्णतः चरितार्थ नहीं होती जब तक वह कर्म और ज्ञान नहीं बन जाती । जब ज्ञान से आलोकित तथा कर्म के द्वारा नियंत्रित और भीम शक्ति प्राप्त प्रबल स्वभाव परमात्मा के प्रति प्रेम एवं आराधना भाव में उन्नत होता है तब वही भक्ति टिकती है तथा आत्मा का परमात्मा से सतत् सम्बन्ध बनाये रखती है । व्यक्तित्व में उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित से ज्ञानयोग सधता है तो समाजसेवा में लोक आराधना में निरत रहने से कर्मयोग । आत्मीयता के आरोपण की, प्रेम की साधना ही भक्तियोग कहलाती है । अध्यात्म क्षेत्र में प्रगति करने एवं महान उपलब्धियों से लाभान्वित होने के लिए तीनों का ही अवलम्बन लेना होगा । ईश्वरीय दिव्य अनुदानों का वास्तविक आनन्द तभी उठाया जा सकता है ।

*

प्रतिभाओं की पहचान व अवतरण की सुनिश्चितता

अक्सर माँ-बाप और अड़ोस-पड़ोस के लोगों को यह शिकायत रहती है कि बच्चा बड़ा शरारती है, इससे निजात कैसे पाया जाय ! पर अब ऐसे बच्चों से चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है । यदि वह शरारती है, तो यह माना जा सकता है कि वह मेधावी है और किसी न किसी क्षेत्र में असाधारण प्रतिभा सँजोये हुए है । यह बात और है कि उसकी उस प्रतिभा की पहचान कर पाना अभिभावक एवं अध्यापक के लिए असंभव हो, पर शोध निष्कर्ष यही बताते हैं कि ऐसे बालक प्रायः मेधा के धनी होते हैं ।

कई प्रकरणों में देखा गया है कि ऐसे छात्र पढ़ाई-लिखाई के क्षेत्र में तो सामान्य होते हैं, पर अन्य क्षेत्रों में असाधारण साबित होते हैं । ऐसे ही एक वैज्ञानिक थे आस्ट्रेलिया के डोनाल्ड फिशरमैन । बाल्यकाल में उनके ऊधमों से परेशान होकर स्कूल के प्रिंसिपल ने पहले तो माँ-बाप को कई चेतावनियाँ दीं कि आपका बच्चा पढ़ने के बजाय मौज-मस्ती और मारपीट में अधिक संलग्न रहता है । स्कूल में जो कुछ भी पढ़ाया जाता है, उस पर वह ध्यान नहीं देता, अतः आप अपने पुत्र को स्वयं समझायें, नियमित रूप से विद्यालय आने की सलाह दें और पढ़ाई में रुचि पैदा करने के प्रति प्रोत्साहित करें । जब स्कूल से इस आशय का शिकायत-पत्र आया, जिसमें कहा गया था कि आपका बच्चा शरारती तो है ही, साथ ही साथ पढ़ने में फिसड्डी भी है, तो उसके माता-पिता पत्र पढ़ कर दंग रह गये । सोचने लगे, जो बालक दफ्ती के टुकड़ों से हवाई जहाज का मॉडल और टेलीफोन जैसे यंत्र की प्रतिकृति बना सकता है, वह बुद्धिहीन कैसे हो सकता है ? अवश्य ही अध्यापकों के बीच बालक के प्रति कहीं-न -कहीं कोई भ्रम पनप रहा है, जिसे वे समझ नहीं पा रहे हैं ।

जब बालक से इस संदर्भ में पूछ-ताछ की गई, तो उसने इसे स्पष्ट शब्दों में स्वीकारा कि विद्यालय जाने में मुझे कोई रुचि नहीं वहाँ जिन विषयों की शिक्षा दी जाती है, उसमें हमारा तनिक भी मन नहीं लगता । मैं कुछ बनाना और अनुसंधान करना चाहता हूँ । अस्तु आप लोग मुझे विद्यालय जाने के लिए विवश न करें । जितना कुछ जानना-सीखना था, वहाँ से मैंने उतना सीख लिया है । अब मैं घर रह कर ही कुछ यांत्रिक कार्य करना चाहता हूँ ।" पुत्र के इस आग्रह के आगे माता-पिता को झुकना पड़ा और जिन-जिन चीजों की उसने माँग की, उन्हें इकट्ठा कर उन्होने उसके लिए एक छोटी प्रयोगशाला स्थापित कर दी । दो-तीन घंटे तक माता-पिता से औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर वह शेष समय अपनी छोटी अनुसंधान शाला में बिताता । उसके आरंभिक कार्यों को देख कर माँ-बाप भी उसे प्रोत्साहित करते । इस प्रकार समय बीतने के साथ-साथ वह छोटे-छोटे वैज्ञानिक यंत्र-उपकरण बनाने लगा । बाद में चलकर उसने अनेक ऐसे उपकरण बनाये, जो विज्ञान के लिए वरदान सिद्ध हुए । आज सभी जानते हैं कि यदि तब फिशरमैन को प्रोत्साहित नहीं किया गया होता उनकी रुचि की उपेक्षा कर दी जाती, तो विज्ञान एक प्रतिभावान वैज्ञानिक से वंचित रह जाता ।

एक कथा है कि एक व्यक्ति एक ऐसे जनरल की खोज में था, जो अदम्य उत्साह और अद्‌भुत साहस का धनी हो, जिसने कभी युद्ध क्षेत्र से पीठ दिखाने और जान बचा कर भाग निकलने को पसंद नहीं किया । उक्त जनरल की तलाश करते-करते वह स्वर्गलोक पहुँच गया, जहाँ सेण्ट पीटर उसे एक आत्मा के निकट ले गये और उसकी ओर इंगित करते हुए कहा "यही वह व्यक्ति है, जिसकी तलाश में अब तक तुम दर-दर की खाक छानते रहे ।" किन्तु खोजी व्यक्ति ने उसे जनरल मानने से साफ इन्कार कर दिया, कहा -"इसे तो मैं तब भी जानता था, जब यह जीवित था, तब तो यह जूते गाँठने का धन्धा करता था, फिर यहाँ आकर यह जनरल किस भाँति बन गया ।" सेण्ट पीटर मुसकराये बोले "तुम ठीक कहते हो । यह मोची ही था, किन्तु प्रारंभ में ही यदि इसकी प्रतिभा पहचान ली जाती , तो यह मोची बना नहीं रहता , संसार का अद्वितीय जनरल साबित होता ।"

यह सत्य है कि प्रतिभा की पहचान नहीं होने के

कारण विश्व कई ऐसे मेधा सम्पन्न प्रतिभाओं को खो देता है, जिनकी यदि समय रहते रुचि व प्रवृत्ति जान ली गई होती, तो दुनिया का इतिहास आज कुछ और ही होता। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रख कर रूस में स्थान-स्थान पर ऐसे स्कूलों की स्थापना की गई है, जहाँ आरंभ काल में ही बच्चों की रुचि और मनोवृत्ति की परख की जा सके। इन विद्यालयों को स्कूल की अपेक्षा नौनिहालों का कौतुक स्थल कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि यहाँ उन्हें कुछ पढ़ाया-सिखाया नहीं जाता, वरन् एक ऐसे कमरे में स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है, जहाँ भाँति-भाँति के उपकरण यथा कागज, कलम, छोटे लौह यंत्र, हल-बैल का छोटा मॉडल, स्वचालित चलते फिरते खिलौने, नृत्य करती गुड़ियाएँ एवं अन्य ऐसे ही दूसरे छोटे उपकरण रखे होते हैं। बालक जिनसे छेड़छाड़ करना अधिक पसन्द करता है व जिसकी ओर अधिक आकर्षित होता है, वही उसकी मूलभूत रुचि मान ली जाती है और बड़े होने पर पुनः उसे उसी क्षेत्र की शिक्षा दी जाती है। अब तक के इसके परिणाम भी बड़े उत्साहवर्धक रहे हैं। इस विलक्षण तरीके से प्रतिभा-जाँच से गुजरे बालक बाद में इसी क्षेत्र के दूसरे वैसे बालकों से कहीं अधिक प्रवीण पारंगत देखे गये, जो इस जाँच-पड़ताल से नहीं गुजरे थे। इस आशय का विस्तृत विवरण सन् १९८१ में रूस से प्रकाशित होने वाली पत्रिका "स्पूतनिक" ने निकाला था।

मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे शरारती प्रतिभा सम्पन्न बालकों में शोध के दौरान कई विशिष्टताएँ देखी हैं, इनमें से प्रथम है उनकी तीक्ष्ण स्मरण शक्ति। उनके अनुसार ऐसे छात्र किसी बात को एक बार सुन पढ़ लेने के बाद मस्तिष्क में उसे इस प्रकार ग्रहण-धारण कर लेते हैं कि दुबारा उसे याद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त उनकी बातें वजनदार और सारगर्भित होती हैं। जो कुछ वे बोलते हैं, वे तर्क व तथ्यपूर्ण होते हैं उनमें जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है, कल्पना की शक्ति होती है, भावाभिव्यंजना की क्षमता एवं नेतृत्व की योग्यता होती है। वे अनेक ऐसे प्रश्न कर सकते हैं, जिनका सही-सही जबाव दे पाना बड़े-बड़ों को कठिनाई में डाल सकता है। वे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व भावनात्मक क्षेत्र में सामान्य बालकों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ तथा सफल होते हैं। तीव्र मेधा सम्पन्न होते हैं, सो अतिरिक्त। आज ऐसे बच्चों की एक पूरी पीढ़ी हम सब के बीच विद्यमान है।

वस्तुतः मेधा अथवा बुद्धि से अर्थ अब तक प्रायः उच्च बुद्धिलब्धि (आई. क्यू.) से लगाया जाता रहा है और लम्बे समय से वह मेधावी का पर्याय बना रहा है, पर मनोविज्ञानी बताते हैं कि "मेधावी" एक बहुअर्थगामी शब्द है, जिसका अर्थ सिर्फ शैक्षणिक योग्यता तक ही सीमित नहीं माना जाना चाहिए। उनके अनुसार एक अनपढ़ टेक्नीशियन अथवा मशीनमैन भी मेधावी हो सकता है। यह बात और है कि उसकी मेधा यांत्रिक क्षेत्र की दिशा में विकसित हुई है। इसी प्रकार दूसरे क्षेत्र के लोग यथा-वाणिज्य-व्यापार सिलाई कढ़ाई गायन-वादन, नृत्य अभिनय गृहकार्य बातचीत, व्यवहार कुशलता जैसी विधाओं में भी प्रवीण पारंगत और तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न हो सकते हैं। शोध के दौरान देखा भी गया है कि जो बालक पढ़ाई में असफल होते हैं, वे कई अन्य क्षेत्रों में अद्भुत मेधा का प्रदर्शन करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में इन्हें मेधावी कहना अनुपयुक्त व अनुचित न होगा, अनेक अवसरों पर ऐसे प्रकरण भी सामने आये हैं, जिनमें बालक को मूर्ख कहा जाय या मेधावी-ऐसी असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती है, क्योंकि ऐसे संदर्भों में बालक से जब सामान्य जोड़-घटाव करने को कहा जाता है, तो वह बगलें झाँकने लगता है, किन्तु उसकी आयु और स्तर के हिसाब से अनेक गुने कठिन सवाल पूछे जाते हैं तो वे उनका उत्तर बड़ी सरलता से दे देते हैं। ऐसा ही एक बालक अभी-अभी पेरिस में प्रकाश में आया है। लॉरेन्स नामक इस बालक की उम्र अभी पन्द्रह वर्ष है, परन्तु अपने से उच्च कक्षाओं के प्रश्न वह आसानी से हल कर लेता है, किन्तु सामान्य सवाल पूछे जाने पर उसे पसीना आने लगता है। इसी कारण लोग उसे "इडियट जिनियस" (मेधावी मूर्ख) के नाम से पुकारते हैं।

यह सत्य है कि हर बालक में अलग-अलग प्रतिभा के लिए जिम्मेदार मस्तिष्कीय भाग समान रूप से विकसित नहीं होते। किसी का कला (चित्रकला, शिल्पकला) वाला हिस्सा विकसित होता है, तो कोई अपना हस्तकौशल साहित्य के क्षेत्र में दिखाने लगता है। इतने पर भी उन्हें होनहार न कहा जाय, तो उनके साथ एक प्रकार से अन्याय करना ही होगा। वे भी मेधावी कहलाने के उतने ही हकदार हैं, जितने

पढ़ाई के क्षेत्र में प्रतिभा सम्पन्न कोई बालक ।

अब यह सुनिश्चित करना कि किसी माता-पिता की संतान में किस प्रकार की क्षमता और विशिष्टता निहित है, अभिभावक का कर्तव्य है । यह कार्य भी कोई बहुत जटिल नहीं है । आरंभ से ही उनके कार्यों का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करके यह भली-भाँति जाना जा सकता है कि बच्चे की रुझान किस ओर है । बस, इतना विदित हो जाने के बाद उसी दिशा में उन्हें प्रेरित प्रोत्साहित करके उक्त क्षेत्र में प्रतिभा सम्पन्न बनाया जा सकता है, पर आज के माँ-बाप पढ़ाई में बच्चे की असफलता देख कर उन्हें मूर्ख मानने की गलती कर बैठते हैं और इतने भर से ही उन्हें हर क्षेत्र में अयोग्य घोषित कर देते हैं, जबकि बात ऐसी है नहीं । आइंस्टीन आरंभ में बिल्कुल मंदबुद्धि बालकों जैसा अपना परिचय देते रहे, किन्तु जब उनकी सही रुचि और रुझान का कार्य मिला तो वे विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिक बन गये । अतः बच्चा पढ़ने में विफल रहा तो उसे बिल्कुल गया-गुजरा और अयोग्य नहीं मान लेना चाहिए ।

रही बात बालक के अतिशय नटखटपन व ऊधमी होने की तो इसे भी प्रतिभा की एक निशानी मानी जानी चाहिए । राम कृष्ण परमंहस आरंभ में बहुत शरारती थे, पर अध्यात्म की जिन ऊँचाइयों को वे छू सके, वह किसी से छुपा नहीं है । यह बात और है कि उनने दाल-रोटी कमाने वाली शिक्षा में कोई रुचि नहीं दिखायी इसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु के बारे में कहा जाता है कि जब वे छोटे थे, तो लोगों को तरह-तरह से इतना परेशान किया करते थे कि वह सब उनसे मुक्ति पाने और शिकवा-शिकायत करने घर पहुँच जाया करते थे, पर फिर भी इनकी शरारत में कमी नहीं आती, किन्तु यह भी सर्वविदित है कि उन दिनों जितनी अल्पवय में उनने आचार्य पद ग्रहण कर अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय दिया था, उससे न सिर्फ नवद्वीप और बंगवासी वरन् दूर-दूर के लोग उनकी अद्वितीय प्रतिभा के कायल बन गये थे ।

वस्तुतः बालक की प्रतिभा के संस्कारों को पहचान कर उनके सही पोषण की व्यवस्था करना एक ऐसी विधा हैं, जिसके विकास की इन दिनों अत्यधिक आवश्यकता है । श्रेष्ठ आत्माएँ भी जब अपने आसपास उपयुक्त वातावरण नहीं देखतीं तो घुटन भरी स्थिति में अधिक देर रहना नहीं चाहतीं । वे अवतरित तो होती हैं किन्तु अनुकूल प्रयास न होते देख सुसंस्कारी वातावरण न पाकर दैवीलोक चल देती है । फिर एक सामान्य बालक ही हम सबके बीच रह जाता है । यदि घरों में श्रेष्ठ संस्कारों के अभिसिंचन पोषण की समुचित व्यवस्था की जाती रहे तो महामानवों के अवतरण के लिए एक क्षेत्र तैयार होता है । देवस्थापना कार्यक्रम मूलतः उसी उद्देश्य के लिए भारत ही नहीं विश्वभर में प्रचलित किया गया है कि प्रतिभाओं के अवतरण हेतु एक राजमार्ग के विकसित होने की प्रक्रिया का शुभारम्भ हो । श्रेष्ठ आध्यात्मिक वातावरण पाकर प्रतिभाओं को अपने विकास की व सतयुगी संभावनाओं को साकार करने की प्रेरणा मिले । आज के आस्था संकट के युग में महामानवों के अवतरण की आवश्यकता है । जहाँ वे जन्म ले चुके हैं, उन्हें सही बोध होने की आवश्यकता है कि उनके धरती पर आने का उद्देश्य क्या है । हम श्रेष्ठता से अभिपूरित संस्कारमय वातावरण परिवारों में देकर सर्वांगपूर्ण सुख-शान्ति का पथ प्रशस्त कर सकते हैं । ❋

गौतमी का एक ही पुत्र था । वह बाल्यकाल में ही अचानक मर गया । इकलौते बेटे के न रहने पर उसकी माता को असीम दुख हुआ ।

गौतमी मरी लाश को लेकर भगवान बुद्ध के पास पहुँची और उनसे जीवित कर देने की प्रार्थना करने लगी ।

सांत्वना उपदेशों का जब उस पर कोई प्रभाव न पड़ा । विलाप बंद न हुआ । तो तथागत ने उसे एक उपाय करने को कहा । वह जाये और एक मुट्ठी अन्न ऐसे किसी घर से माँग लाये । जिसके वहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो ।

गौतमी ने सारा नगर खोज डाला । अन्न देने को तो सभी तैयार थे । पर यह कोई नहीं कहता था कि उनके घर में कोई नहीं मरा ।

इस याचना की अवधि में गौतमी सोचती रही कि जब जन्म की नियति मृत्यु है ही तो मेरा पुत्र ही उसका अपवाद कैसे हो सकता । उसने जैसे ही तथ्य को समझा वैसे ही उसकी शंका का समाधान हो गया ।

वापस लौटी और मृत शरीर का सामान्य रीति से अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया गया ।

संयोगों से परे एक बुद्धिमत्तापूर्ण सत्ता

इस संसार में कोई भी वस्तु निरुद्देश्य अथवा निरर्थक नहीं है । मनुष्य के क्रिया–कलाप इस स्तर के हो सकते हैं, पर जहाँ विवेकशील स्रष्टा की बात आती है, वहाँ उसके संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि मात्र कौतूहल उत्पन्न करने के लिए यह कौतुकपूर्ण संरचना उसने गढ़ी है ।सच्चाई तो यह है कि उसकी विवेक–बुद्धि मनुष्य से इतनी अधिक है कि उसकी इंजीनियरी मनुष्य की छोटी बुद्धि की समझ में आती ही नहीं । उसके जो क्रिया–कलाप मानव की स्थूल–बुद्धि समझ लेती है, उसे तो मनुष्य सामान्य और सुविज्ञात कह कर पुकारने लगता है, पर जो समझ के परे होता है, उसे रहस्य रोमांच की संज्ञा दे देता है । संसार भर में ऐसी कितनी ही ज्ञात प्राकृतिगत रचनाएँ हैं, जिन्हें समझ नहीं पाने के कारण इसी श्रेणी में रख दिया गया है ।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की सीमाएँ जहाँ एक दूसरे से मिलती हैं, वहाँ एक ऐसी विशाल चट्टान है, जिस पर यदि कोई व्यक्ति चढ़ जाये, तो वह काँपने लगती है और इसी के साथ एक विचित्र ध्वनि भी निकलने लगती है । बताया जाता है कि बहुत पहले उस क्षेत्र के राजा ने उस पर एक महल बनवाया था सुख साधनों के लिए थोड़े–थोड़े समय तक के लिए उस में निवास करता था । यद्यपि आज किसी इमारत का चिन्ह वहाँ मौजूद नहीं है , किन्तु उस शैल खण्ड को अभी भी यथावत देखा जा सकता है । विश्व के कई देशों के वैज्ञानिकों ने उसका गहन पर्यवेक्षण किया है, पर किसी की समझ में यह नहीं आया कि उस पर सवार होते ही वह कम्पन व ध्वनि उत्पन्न क्यों करने लगती है ?

ऐसे ही दक्षिण कोरिया के पूर्वी किनारे पर स्थित तुंग सू नदी के तट पर एक विशाल चट्टान है । चीन ने जब उस राज्य पर आक्रमण किया था, तो वहाँ का राजा पराजित हो गया । उसे बन्दी बना लिया गया । उसकी सात रानियाँ थीं । अपमान से बचने के लिए उन सबने एक साथ समीपवर्ती नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली । तब से हर वर्ष तटवर्ती चट्टान में फूल के सात पौधे उगते हैं । धरे–धीरे वे बढ़ते हैं, उनमें फूल आते हैं और घटना के दिन सभी फूल एक साथ नदी जल में गिर जाते हैं । प्रति वर्ष इस घटना को देखने के लिए हजारों की संख्या में लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं व प्रकृति की इस अद्भुत घटना को घटते अपनी आँखों से देखते हैं । पता नहीं क्यों प्रकृति उस घटना को अविस्मरणीय बनाना चाहती है । उपस्थित लोगों की समझ में यह भी नहीं आता कि किसी पत्थर पर पौधे कैसे उग आते हैं ? वह भी एक ही किस्म के एवं संख्या में सिर्फ सात, फिर वर्ष के एक निश्चित दिन ही क्यों झड़ जाते हैं यह सब कुछ रहस्य बना हुआ है ।

मोरक्को के उत्तरी भाग के एक गाँव में दो ताड़ के पेड़ आस–पास खड़े हैं । बगल में एक बड़ा तालाब है । दिन के समय तो ये पेड़ सीधे खड़े रहते हैं, किन्तु ज्यों–ज्यों सूर्य ढलता जाता है, ये पेड़ तालाब की ओर झुकने लगते हैं और जैसे ही वह अस्ताचलगामी होता है, ताड़ के पत्ते और वृक्ष के शीर्ष पानी में डूब जाते हैं, मानों संध्या वंदन के निमित्त स्नान कर रहे हों । फिर जैसे–जैसे रात गहराती जाती है, ये अपनी पूर्व स्थिति में आने लगते हैं तथा मध्य रात्रि तक सीधे खड़े हो जाते हैं । यह इनका प्रतिदिन का नियम है । ऐसा क्यों होता है ? वनस्पतिशास्त्री अब तक इसका कारण नहीं जान पाये हैं ।

इजराइल अधिकृत लेबनान की गोलान पहाड़ियों में प्रकृतिगत एक ऐसी गुफा है, जिसमें यदि कोई मनुष्य अथवा जानवर प्रवेश करता है, तो उसकी छत की एक दरार से पानी के फव्वारे छूटने लगते हैं । आश्चर्य तो यह है कि उस जानवर अथवा व्यक्ति के बाहर निकलते ही फव्वारे स्वतः बन्द भी हो जाते हैं ।कई शोध दल प्रकृति के इस रहस्य को समझने हेतु वहाँ गए भी पर कारण जान पाने में सर्वथा विफल रहे ।

वस्तुतः संयोगों व रहस्य रोमांचों का कोई विधान भगवतसत्ता की बनाई इस सृष्टि में नहीं है , हमें वैसा प्रतीत इसलिए होता है कि हमारी स्थूल बुद्धि प्रत्यक्ष के पीछे के सूक्ष्म रहस्य को समझ नहीं पाती है । नियन्ता कर्ता की बुद्धि की इसलिए सराहना की जानी चाहिए कि उसने मानव की शोध वृत्ति जिन्दा रखने के लिए यहाँ इस संसार में कुछ भी निरुद्देश्य नहीं बनाया है । यह सोचकर ही हम उस पर विश्वास सुदृढ़ करते हैं । *

शब्द शक्ति के साथ यज्ञाग्नि की जुड़ी हुई सामर्थ्य

मंत्र विद्या और यज्ञ विज्ञान का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । मंत्र विद्या में जप–अनुष्ठान आदि की महत्ता है, किन्तु उनकी पूर्णता यज्ञकृत्य द्वारा सम्पन्न होती है । गायत्री जप अनुष्ठान के संबंध में जिन्हें विस्तृत जानकारी है उन्हें यह भी विदित है कि अनुष्ठानों की पूर्णता के लिए यज्ञ कृत्य भी उसके साथ जोड़ना पड़ता है । मात्र जप ही करते रहा जाय और उसके साथ यज्ञ का समावेश न किया जाय, तो उतने भर से अभीष्ट शक्ति का उत्पादन न होगा, लक्ष्य की पूर्ति न होगी ।

जड़ शक्तियों में जिस प्रकार धन, बल, पद, शस्त्र आदि की क्षमताओं को बड़ी सामर्थ्य बताया गया है , उसी तरह चेतना के क्षेत्र में मंत्र विद्या और यज्ञ विज्ञान की अपनी विशिष्ट महत्ता है । इनके समन्वित प्रयोग से ओजस्, तेजस्, वर्चस का आत्मोत्कर्ष का लाभ हस्तगत होता है । यज्ञ विज्ञान के माध्यम से शक्ति प्राप्त होती है । भौतिक क्षेत्र में कृषि, व्यवसाय, यंत्र, यह सब विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं । यंत्रों के द्वारा महत्वपूर्ण उत्पादन होते हैं । कल–कारखाने मनुष्य के लिए सम्पदा कमाते हैं । अस्त्र–शस्त्र भी विज्ञान की ही उत्पत्ति हैं । कोयला, भाप, बिजली, अणुशक्ति आदि वैज्ञानिक उत्पादन के लिए शक्ति उत्पन्न करते हैं । इस समस्त विज्ञान प्रक्रिया को 'यंत्र' उत्पादन कहते हैं ।

दूसरा क्षेत्र चेतना का है । चेतना की क्षमता ज्ञान परिधि में आती है । ज्ञान मंत्र है । मंत्र का उच्चारण वाणी से होता है । इसलिए उसे वाक्शक्ति भी कहा गया है । अध्ययन, अध्यापन, विचार–विमर्श यह मंत्र पक्ष है । इसके द्वारा चेतना क्षेत्र को प्रभावित किया जाता है । वाक्शक्ति की महिमा असामान्य बताई गई है । साधारण बोलचाल के द्वारा ही नहीं, ऋषि प्रणीत मंत्रों के अमुक विधि–विधान में प्रयोग करने का प्रतिफल भी असाधारण होते देखा गया है । मंत्र भी एक महाविज्ञान है । उसकी एक पद्धति यौगिक दक्षिण-पंथी है । दूसरी तांत्रिक वाममार्गी । तंत्र भी मंत्र के समान ही विशिष्ट विज्ञान है । इनमें शाप–वरदान की दोनों स्तर की क्षमता है । प्राचीनकाल में वैज्ञानिक युद्ध भी लड़े जाते थे । उनमें मंत्रों का प्रयोग होता था । सम्पदा उत्पादन में भी मंत्रों का महान उपयोग है । असुर वाममार्गी तांत्रिक प्रयोग करते थे और देव सम्प्रदाय वाले भौतिक सुख–शान्ति की अभिवृद्ध के लिए तथा सूक्ष्म चेतना को बलवती बनाने के लिए यह प्रयोग करते थे । दोनों में ही वाक्शक्ति का प्रयोग होता था ।

विज्ञान में ताप, ध्वनि और प्रकाश को शक्ति की मूलभूत इकाई माना गया है । मंत्र केवल ध्वनि है । शब्द की अपेक्षा ताप और प्रकाश की गति तीव्र है । मंत्र को व्यापक बनाने के लिए उसके साथ ताप और प्रकाश को यज्ञ के रूप में जोड़ना पड़ता है , तभी वह अधिक शक्तिशाली और विश्वव्यापी बनता है ।

यज्ञ के सूक्ष्म आधारों की चर्चा न करके केवल भौतिक विज्ञान की दृष्टि से भी देखा जाय तो भी स्पष्ट होगा कि उसमें मंत्र–ध्वनि और ताप की दोनों ही शक्ति धाराओं का उच्चस्तरीय उपयोग एवं समन्वय किया गया है । मंत्रोच्चार में ध्वनि विज्ञान के रहस्यमय सिद्धान्तों का समावेश किया गया है, तो यज्ञ प्रक्रिया को ताप और प्रकाश शक्ति का विशिष्ट प्रयोग कहा जा सकता है । इन दोनों भौतिक शक्तियों का समन्वय करके अध्यात्म उद्देश्यों की पूर्ति के लिये लगा दिया जाय तो उसका सत्परिणाम वैसा ही होता है जैसा कि यज्ञ विज्ञान के जन्मदाता ऋषि–मनीषियों ने सुविस्तृत फलश्रुति के रूप में प्रस्तुत किया है ।

अग्नि का ही एक रूप विद्युत है । रेडियो प्रसारण में वक्ता की आवाज धीमी होती है । उसकी चाल भी मंद होती है । पर जब रेडियो यंत्र द्वारा उसमें विद्युत समावेश किया जाता है तो वह आवाज विश्वव्यापी बन जाती है और सैकिण्डों में पृथ्वी की परिक्रमा लगा लेती है । उसे हजारों–लाखों रेडियो यंत्र पकड़ लेते हैं और करोड़ों व्यक्ति उसे एक साथ सुन लेते हैं । लेसर किरणों का प्रवाह भी ध्वनि परक है । उसके साथ विशेष विद्युत शक्ति समावेश हो जाता है तो उसकी सामर्थ्य गजब की हो जाती है । चन्द्रमा तक

सेकिण्डों में धावा बोल देती है। उसकी सामर्थ्य इतनी बढ़ी चढ़ी होती है कि दाँतों तले उँगली ही दबानी पड़ती है। छोटे यंत्रों में लाउडस्पीकर की शक्ति को देखा जा सकता है। एक आदमी धीमी सी आवाज बोलता है, पर जब उसमें बैटरी या बिजली का सम्मिश्रण हो जाता है तो उतने भर से एक साथ सैकड़ों लाउडस्पीकर बोलने लगते हैं और लाखों व्यक्ति एक साथ उस वाणी को सुनते हैं। यज्ञ की, यज्ञ कुण्डों की बैटरी, की जेनरेटर, डायनुमों आदि से तुलना की जाती है जो ध्वनि शक्ति को सशक्त और सुविस्तृत बनाते हैं।

यज्ञ विज्ञान के संदर्भ में किये जा रहे शोधअनुसंधानों से जो तथ्य सामने आये हैं, उनने मंत्रोच्चार द्वारा उत्पन्न ध्वनियों को मानवी उपयोग के अनेक कार्यों में प्रयुक्त कर सकना संभव बना दिया है। कुछ सूक्ष्म ध्वनि प्रवाह सृष्टि की अन्यान्य हलचलों के कारण स्वयमेव उत्पन्न होते रहते हैं और उनके आधार पर प्रस्तुत परिस्थितियों एवं भावी संभावनाओं की बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अपनी शताब्दी का एक नया प्रयोग और जुड़ा है कि मंत्रशक्ति के साथ यज्ञ शक्ति का समन्वय करके अभीष्ट प्रयोजन के लिए अभीष्ट स्तर की श्रवणातीत ध्वनियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं और उन स्वनिर्मित ब्रह्माण्डीय कम्पनों का आश्चर्यजनक लाभ उठाया जा सकता है। इस आधार पर न केवल वातावरण को शान्त एवं उत्तेजित करने, अनुकूल बनाने जैसे प्रयोजन सध सकते हैं, वरन् मानवी मस्तिष्क एवं अन्तराल को भी उपयुक्त दिशा में मोड़ा-मरोड़ा जाना संभव है। इन सूक्ष्म मंत्र ध्वनियों में से कितनी ही इतनी अदभुत और इतनी सक्षम हैं कि उनके स्वरूप की कल्पना मात्र से आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। तापशक्ति के समावेश से तो वे और भी अधिक सशक्त एवं प्रभावोत्पादक बन जाती हैं।

वैयक्तिक प्रयोजनों के लिए एवं सामूहिक प्रयोजनों के लिए दोनों ही प्रकार के कृत्यों में तदनुरूप यज्ञ किये जाते हैं। मंत्र शक्ति का समन्वय भी उन्हीं के अनुरूप होता है। राजा दशरथ ने संतानोत्पत्ति के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। यह व्यक्तिगत हुआ। लंकादमन और महाभारत के द्वारा असुरवध तो हो गया था, पर व्यापक वातावरण की शुद्धि शेष रह गई थी। उसके लिए भगवान राम ने दश अश्वमेध यज्ञ किये थे और कृष्ण के तत्वावधान में राजसूय यज्ञ हुआ था। रामराज्य के लिए जो वातावरण बनाया जाना था, उसकी भूमिका दश अश्वमेधों द्वारा सम्पन्न हुई थी। इसी प्रकार कौरवों के असुर दल का हनन होने के उपरान्त परीक्षित जनमेजय के नेतृत्व में भारतवर्ष को महान भारतवर्ष बनाने की महाभारत की जो योजना थी, उसकी भूमिका बनाने के लिए विशालकाय राजसूय यज्ञ ही सम्पन्न कर सका।

प्राचीनकाल में जहाँ वैयक्तिक, क्षेत्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्वों के अवसर पर मध्यवर्ती यज्ञ होते रहते थे, वहाँ बड़े-बड़े कुंभ जैसे अवसरों पर विशिष्ट अनुष्ठान और यज्ञ होते थे। यह सूक्ष्म जगत के संशोधन के निमित्त किये जाने वाले प्रयोग थे। इन्हें वातावरण संशोधन एवं प्रकृति अनुकूलन के व्यापक प्रयत्नों उपचारों के रूप में जाना जाता था।

मंत्र वाक्शक्ति है। उसकी छोटी सीमित शक्ति को व्यापक बनाने के लिए यज्ञ को संयुक्त करना आवश्यक है। ऐसे अनेकों आधार हैं जिनके सहारे यज्ञीय क्रिया-कृत्य में उच्चारण किये गये मन्त्रोच्चार से न

धर्म और विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं, सहयोगी हैं-आग और रोशनी की तरह। जो धर्म, विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, जो विज्ञान धर्म से अनुबंधित नहीं, वह ऐसा है-जैसा प्राण के बिना शरीर।

केवल उपयोगी ध्वनि तरंगें उत्पन्न होतीं वरन् उस आयोजन में सम्मिलित होने वाले लोगों के लिए लाभदायक सत्परिणाम प्रस्तुत करती हैं। उसमें से बड़ी उपलब्धि श्रवणातीत सूक्ष्म ध्वनि तरंगों की है जो शब्द और ताप दोनों के समन्वय से उत्पन्न होती हैं और उनसे सुविस्तृत क्षेत्र का वातावरण प्रभावित होता है। फलतः प्राणवान पर्जन्यवर्षा से लेकर अन्यान्य कई प्रकार के ऐसे आधार खड़े होते हैं जो सर्वतोमुखी सुख-शान्ति में सहायता कर सकें। सूक्ष्म वातावरण के परिशोधन और उसके फलस्वरूप सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले वातावरण का सृजन भी मंत्र विद्या और यज्ञ विज्ञान की समन्वित प्रक्रिया का अति महत्वपूर्ण प्रतिफल है। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अभीष्ट शक्ति का उत्पादन जप-अनुष्ठानों के साथ यज्ञ का समावेश करने पर ही होता है। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखते हुए भारतीय धर्म में यज्ञ को उच्चकोटि का श्रेय-सम्मान दिया गया है।

*

प्रज्ञायोग की एक सहज सुगम साधनापद्धति

भोजन सभी करते हैं पर इसके उपरान्त किसी को दूध लेना हो, दवा का सेवन करना हो तो इसका निषेध भी नहीं है। दोनों साथ-साथ चल सकते हैं। कोई व्यवसाय के साथ-साथ संगीत का अभ्यास जारी रखना चाहे तो इसे परस्पर विरोधी नहीं कहा जायगा वरन् पूरक या समन्वय ही माना जायगा। इसी तरह अध्यात्म क्षेत्र में भी अभ्यस्त साधनाओं के अतिरिक्त "प्रज्ञायोग" को एक विशेष बलवर्धक रसायन सेवन करने की तरह अपनाया जा सकता है।

प्रज्ञायोग सार्वभौम एवं सार्वजनीन है। इसे सभी धर्म, सम्प्रदाय, मत, वाद वाले लोगों द्वारा बिना पूर्व मान्यताओं का उथल-पुथल किए अतिरिक्त रूप से किया जा सकता है। यदि इस अकेले से ही काम चलता प्रतीत हो और पिछले अभ्यास को छोड़ने में कोई हिचक न होती हो तो प्रज्ञायोग के अकेले विधान को अपनाकर भी आगे बढ़ा जा सकता है। कारण कि यह सर्वांगीण एवं सर्वतोमुखी है। इसमें देवोपासना के अतिरिक्त आत्मपरिष्कार के सारे तत्वों का भी समावेश है। इसे विश्व साधना या युग साधना का नाम भी दिया जा सकता है। यह विशुद्ध मंडन है। इसमें किसी प्रक्रिया के खण्डन का कोई प्रतिपादन नहीं मतभेदों के उभरने के स्थान पर एक ऐसी सार्वभौम साधना प्रक्रिया युग मनीषी द्वारा प्रस्तुत की गयी है जिसे हर मान्यता और हर पंथ का व्यक्ति अपना सकता है। साथ ही उन असमंजसों का वैकल्पिक समाधान भी पा सकता है जो अनेक विधानों पर दृष्टिपात करने पर कौन सही कौन गलत के रूप में सामने आते रहते हैं।

प्रज्ञायोग के छः पक्ष हैं।

(१) आत्मबोध-तत्वबोध--प्रातःकाल उठते ही नये जन्म का अनुभव। आज की दिनचर्या का निर्धारण तथा रात्रि को सोते समय दिन भर के कार्यों की समीक्षा। मृत्यु का स्मरण। जीवन का सदुपयोग न कर सकने पर अन्त समय होने वाले पश्चाताप से मुक्ति दिलाने वाला निर्धारण।

(२) भजन- नित्य कर्म से निवृत्त होने पर जप ध्यान वाला भजन।

(३) मनन-- अपरान्ह में आत्मपर्यवेक्षण करते हुए आत्म समीक्षा, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास की सामयिक योजना बनाना और उसे कार्यान्वित करने के लिए संकल्पपूर्वक अग्रगमन।

(४) तप साधन--सप्ताह में एक दिन उपवास ब्रह्मचर्य, मौन, स्वाध्याय।

(५) अंशदान--में तपसाधनाओं का क्रियान्वयन। हर दिन या सप्ताह में एक दिन की कमाई परमार्थ प्रयोजनों के निमित्त सुनियोजन। न्यूनतम यह राशि प्रतिदिन बीस पैसे तो होनी ही चाहिए

(६) प्रकाश वितरण--अनुष्ठानों के कर्मकृत्यों की पूर्णाहुति ब्रह्म-भोज के रूप में किए जाने की परम्परा है। प्राचीन काल में धर्माचरणों का परिपोषण ही ब्रह्मभोज माना जाता था। वह न बन पड़ने पर प्रसाद वितरण की परम्परा चल पड़ी। किए गये धर्मकृत्यों का प्रभाव-परिचय अन्य लोग भी इस माध्यम से ग्रहण करते थे तथा अनेकों को इस मार्ग पर चलने का प्रोत्साहन मिलता था। अब यह कार्य हर साधक को स्वयं ही करना चाहिए।

प्रज्ञायोग सार्वभौम होने के कारण उसमें गायत्री मन्त्र का प्रयोग नितान्त अनिवार्य नहीं है। ऊँकार जप से भी वह प्रयोजन पूरा हो सकता है। ऊँकार में किसी भाषा का व्यवधान भी नहीं पड़ता है। नित्य नियमित रूप से सभी साधनायें समुचित फल प्रदान करती हैं। अनियमित, अस्तव्यस्त, उपेक्षापूर्ण, अन्यमनस्क भार से किसी प्रकार चिन्ह पूजा की तरह निपटाई हुई साधनायें प्रायः निष्फल ही सिद्ध होती हैं। हर साधना में मनोयोग और भाव संवेदन का समुचित समावेश सहज ही चाहिए। प्रज्ञायोग में भी।

प्रकाश वितरण का प्रसंग अपने आप में अति महत्वपूर्ण है। यों वह पूजापाठ के रूप में नहीं है पर उसे किसी भी धर्मकृत्य से किसी भी प्रकार कम महत्व का नहीं माना जाना चाहिए।

पुण्य परमार्थ का स्वरूप है अपना सुख बाँटना और दूसरों का दुःख बँटा लेना। इसी बात को पुण्य

के संबंध में भी किया जा सकता है। अपने पुण्य प्रयासों, सत्कार्यों, उच्चस्तरीय सिद्धान्तों का प्रकाश दूसरों तक पहुँचाया जाय। दूसरों का अज्ञान, अवसाद, अनुत्साह बँटा कर कम कर देने का प्रयत्न किया जाय तो इसे भी सुख बाँटने और दुःख बँटाने की तरह ही पुण्य परमार्थ माना जायगा। लोकमंगल के प्रयासों के साथ आत्मकल्याण भी जुड़ा हुआ है।

उत्सव पर्वों पर अपने यहाँ कोई मिष्ठान्न आदि बनते हैं तो उनका वितरण पड़ोसियों में भी किया जाता है। हर्षोत्सवों में मित्र स्वजनों के यहाँ उपहार पहुँचाये जाते हैं। वर्ष के आरंभ में भेट, उपहार, ग्रीटिंग्स डायरियाँ आदि भेजने का प्रचलन है। यह उपहार पद्धति सत्प्रयत्नों को व्यापक बनाने के रूप में भी होनी चाहिए। दीपक जलता है तो अपना प्रकाश समीपवर्ती क्षेत्र में अनवरत रूप से फैलाता रहा है। यह सूर्य के प्रकाश वितरण का ही एक छोटा स्वरूप है। तीर्थयात्रा से लौटकर लोग आते हैं तो वहाँ का प्रसाद भी साथ लाते हैं और उसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अपने संबंधियों तक पहुँचाते हैं। इसमें मुँह मीठा करना जितना ही भाव नहीं है वरन् अपने द्वारा किए गये कृत्य का महत्व समझाना और उसका अनुकरण करने के लिए उत्साह भरा वातावरण विनिर्मित करना भी एक प्रयोजन है।

प्रज्ञायोग के साधकों को उस पुण्यलाभ का प्रकाश विस्तार भी अपने सम्पर्क क्षेत्र में करना चाहिए। आत्मिक स्तर की अभिरुचि उनमें तनिक भी दीख पड़े तो उनके अंकुर सींचने के लिए अपने परामर्श का लाभ उन्हें देना चाहिए। इस प्रक्रिया का दार्शनिक मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक लाभ समझाना चाहिए और बताना चाहिए कि वह मात्र कर्मकाण्ड की तरह पूजा की तुलना में अधिक समग्र और फलप्रद किस कारण से है। अपने को जो तुष्टि तृप्ति और शान्ति इस अवलम्बन को अपनाने पर मिली हो उसका परिचय भी लोगों को देना चाहिए।

प्राचीन काल में धर्मकृत्यों के साथ ब्रह्मभोज का भी एक पक्ष जुड़ा रहता था। उन दिनों धर्म प्रचारक ही सत्प्रवृत्ति संवर्धन का कार्य करते थे। प्रेस प्रकाशन उन दिनों थे नहीं। सत्संग का प्रयोजन ब्रह्मयात्रा पदयात्रा, परिभ्रमण द्वारा ही पूरा करते थे। जन जाग्रति का, धर्मधारणा को जीवन्त रखने का प्रयोजन इसी आधार पर पूरा होता था। वह सम्पदा अब लुप्तप्रायः होती जा रही है, इसलिए ब्राह्मणों को भोजन देकर पुण्य अर्जित करने का प्रयोजन भी अब निरस्त हो चला है। अब वह कार्य साधकों को स्वयं ही करना चाहिए। अपनी साधना की समग्रता, दार्शनिकता का विवरण अपने सम्पर्क क्षेत्र में बताते रहना चाहिए। उससे जो सन्तोष एवं आंतरिक आनन्द मिला है उसका परिचय देते रहना चाहिए। ताकि जिन्हें इस मार्ग में ज्ञान नहीं है उनकी भी जिज्ञासा जागे, और अधिक विवरण जानने पर उस मार्ग पर चलने का उत्साह भी उभरे। स्वयं ही धर्मप्रचारक बनने और अपने परिवार, पड़ोस एवं परिचय क्षेत्र में प्रकाश वितरण की भूमिका निभानी चाहिए। आवश्यक नहीं कि यह पुण्य प्रचार मात्र प्रज्ञायोग तक ही सीमित हो। भावना, विचारणा आकांक्षा एवं प्रयास प्रक्रिया में दूरदर्शी विवेकशीलता भरने वाले हर प्रसंग प्रज्ञायोग के साधकों के लिए प्रकाश वितरण का माध्यम हो सकते हैं। आदर्शवादी उत्कृष्टता को अपनाने के लिए उत्साह उत्पन्न करने वाला हर प्रसंग धर्मप्रचार का माध्यम बन सकता है।

इग्लैण्ड के रैदास जोसिफ पोण्डल ने अपने समय में असाधारण प्रतिष्ठा अर्जित की थी। वे ऊँचे दर्जे के दार्शनिक और सिद्धान्तवादी समझे जाते थे।

उनने आजीविका उपार्जन के लिए पुराने जूतों की मरम्मत का काम चुना था। उसमें उनने बरबादी की बचत का लाभ नागरिकों को देने की बात सोची थी और यह भी ध्यान रखा कि उन्हें ऊँचे व्यवसाय के कारण कोई बरीयता न मिले।

प्रज्ञायोग के साधकों को अपना आहार-विहार और व्यवहार ऐसा रखना चाहिए, जिससे उनके चरित्र चिन्तन एवं क्रियाकलाप का स्तर गिरने न पाये। प्रज्ञायोग की छः भागों में विभक्त कृत्य साधना का निर्धारण तो स्पष्ट ही है पर उसकी साधना सुसंस्कारिता की जीवन साधना और लोकमंगल की परमार्थ साधना को भी एक पक्ष माना जाना चाहिए। इसे आराधना की संज्ञा देनी चाहिए। तभी आत्मिक प्रगति का त्रिवेणी संगम बन पड़ता है,

यदि अपने समग्ररूप में यह योग साधना नियमित रूप से की जाती रहे तो अल्प समय में ही सद्गुणों के विकास, कार्यक्षमता की वृद्धि तनाव शैथिल्य, आभामण्डल में वृद्धि प्रभावोत्पादकता तथा लोक सम्मान-जनसहयोग के रूप में इसकी परिणतियाँ देखी जा सकती हैं। अष्टांग योग के उच्चतम सोपानों पर कदम रखने वाले इस प्रारंभिक अभ्यास को पहले करलें तो बड़ी उपलब्धियाँ तो सहज ही मिल जाती हैं। ✻

आहार की व्यक्तित्व निर्माण में महती भूमिका

आहार का मन से घनिष्ट सम्बन्ध है । उसमें पाये जाने वाले रसायन अथवा पोषक तत्व केवल शरीर तक ही अपना प्रभाव नहीं दिखाते, वरन् मानवी चेतना को भी प्रभावित करते हैं । अन्न का स्थूल स्वरूप अस्थि–रक्त–मांस का निर्माण करता है तो उसके सूक्ष्म रूप से मन–मस्तिष्क एवं विचार बनते हैं और कारण रूप भावनाओं का निर्माण करता है । शारीरिक परिपुष्टता–बलिष्ठता के लिए मात्र योगासन, व्यायाम ही नहीं शुद्ध सात्विक आहार भी स्वस्थ काया, स्वच्छ मन, एवं चेतनात्मक उत्कर्ष के लिए आवश्यक है ।

इसीलिए अध्यात्म विद्या–विशारदों ने आत्मिक प्रगति एवं समग्र स्वास्थ्य संवर्धन के लिए आहार शुद्धि पर सर्वाधिक जोर दिया है । उनका कहना है कि मनुष्य केवल हाड़–मांस का पिण्ड तो है नहीं, उसमें बौद्धिक, आत्मिक हलचलें भी सम्मिलित हैं । अतः आहार में उनके समुचित पोषण की भी व्यवस्था होनी चाहिए । गीता के सत्रहवें अध्याय में इसी दृष्टि से त्रिविध आहार का वर्गीकरण किया है जो मानवी चेतना पर सात्विक, राजसिक और तामसी प्रभाव छोड़ते हैं । गीताकार के अनुसार भोजन का प्रयोजन केवल शरीर का पोषण और बल संवर्धन ही नहीं है , वरन् उससे मानसिक और आत्मिक पोषण भी मिलना चाहिए । बहुत से पदार्थ ऐसे होते हैं जो शरीर की शक्ति–सामर्थ्य को तत्काल बढ़ा देते हैं, परन्तु मनुष्य को मानसिक एवं आंतरिक दृष्टि से अस्त–व्यस्त भी कर देते हैं । नशीले पदार्थों को इसी प्रकार के भोजन की श्रेणी में रखा जा सकता है ।

यों आहार के रासायनिक तत्वों, पोषक घटकों का विश्लेषण तो बहुत पहले से होता रहा है कि भोजन में कौनसा पदार्थ कितनी मात्रा में होना चाहिए । किन्तु मन–मस्तिष्क पर पड़ने वाले विभिन्न और विचित्र प्रभावों का अनुसंधान इन्हीं दिनों हुआ है । इस संदर्भ में हुए प्रयोग–परीक्षण सिद्ध करते हैं कि मस्तिष्क का स्तर आहार की परिधि में ही आता है और उससे प्रभावित होता है । आहार विशेषज्ञों का निष्कर्ष है कि केवल स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन, मनन से ही नहीं, भोजन के साथ घुले हुए सूक्ष्म तत्वों का सन्तुलन बनाकर मनुष्य के सोचने का तरीका भी समुन्नत किया जा सकता है । इतना ही नहीं भावनाओं की दिशा भी बदली जा सकती है । अवांछनीय दिशा में चल रही भाव विकृति को आहार शुद्धि के माध्यम से वांछित दिशा में मोड़ा और सुधारा जा सकता है । दुष्प्रवृत्तियों में लगे हुए दुर्भावना ग्रस्त मनुष्य के अन्तःकरण को परिष्कृत किया जा सकता है और उसकी प्रवृत्ति में मनोवृत्ति में अभीष्ट परिवर्तन किया जा सकता है ।

ब्रिटेन के मैन्चेस्टर मेडिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में गंभीरतापूर्वक अनुसंधान किया है और निष्कर्ष निकाला है कि आहार का मनुष्य और प्राणियों के स्वभाव, गुण तथा प्रकृति पर भारी प्रभाव पड़ता है । इसके लिए कितने ही परीक्षण किये गये जिनमें से एक चूहों पर था । चूहा स्वभावतः शांत प्रकृति का होता है किसी से लड़ता–झगड़ता या आक्रमण नहीं करता । प्रयोगशाला में पाले गये चूहों में से कुछ को बाहर निकाला गया और उन्हें सामान्य आहार न देकर मिर्च–मसाले तथा मांस और नशीली चीजों से बना आहार दिया गया । इसे खाने से पूर्व वे चूहे बेहद शान्त थे, पर इसके कुछ ही घन्टे बाद, उद्दण्ड और आक्रामक बन गये । उन्हें वापस पिजरें में छोड़ा गया तो वे आपस में ही लड़–झगड़ कर लहू–लुहान हो गये ।

इसके बाद उन्हीं चूहों को दूसरी बार सरल, शुद्ध और सात्विक भोजन दिया । इस पर भी पिछला प्रभाव तो बाकी था, किन्तु चूहे अपेक्षाकृत शान्त थे । कई बार इस तरह का आहार लेने के बाद ही वे अपनी वास्तविक स्थिति में आ पाये । इस तरह के सैकड़ों प्रयोगों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका कि जो कुछ खाया पिया जाता है; उससे शरीर का पोषण ही नहीं होता वरन् लिया गया भोजन मनुष्य का व्यक्तित्व बनाने में भी असाधारण भूमिका निबाहता है ।

आहार का मानवी मस्तिष्क और स्वभाव पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इस विषय को लेकर पश्चिमी देशों

में काफी खोजबीन हो रही है। भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो इस विषय पर पहले से ही विशद प्रकाश डाल रखा है कि क्या खाने से बौद्धिक प्रखरता बढ़ती है और कौनसा आहार स्वभाव तथा व्यक्तित्व की मूल परतों को स्पर्श करता है। वैज्ञानिक अन्वेषण भी अब इसी तथ्य की पुष्टि करने में लगे हैं। इसी सम्बन्ध में अमेरिका के वाल्टीमोर शहर के एक स्कूल में ५२ विद्यार्थियों को कुछ दिनों तक विशेष आहार एवं औषधि दी गई। परीक्षणोपरान्त पाया गया कि एक महीने बाद उनकी मस्तिष्कीय क्षमता पहले से अधिक बढ़ गयी थी।

इसी तरह से मिशीगन यूनिवर्सिटी के प्राणिशास्त्रियों ने मस्तिष्क पर आहार के प्रभाव जाँचने के लिए अनेक प्रयोग किये हैं। सुप्रसिद्ध जीवशास्त्री डा. वर्नार्ड एग्रानोफ ने अपने प्रयोगों के दौरान मनुष्येत्तर प्राणियों की खुराक में फेर बदल कर उन्हें चतुर और भुलक्कड़ बनाने में सफलता प्राप्त की है। उनके अनुसार आहार में सात्विकता की मात्रा घटने-बढ़ने से मस्तिष्क की क्षमता भी घटती-बढ़ती है। दस वर्षों तक लगातार प्रयोग और परीक्षण करने के बाद कैलीफोर्निया विश्व विद्यालय के मूर्धन्य मनोविज्ञानी रिचार्ड थाम्पसन भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बुद्धि दैवी वरदान नहीं है, वरन् उसे मानवी प्रयत्नों से घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है। इस प्रयोग श्रृंखला में उन्होंने कुत्तों, बिल्लियों, चूहों और बन्दरों को भी शामिल किया और प्रतिपादन किया कि अन्य शारीरिक परिवर्तनों के समान ही आहार द्वारा मस्तिष्कीय क्षमता में भी हर स्तर का परिवर्तन कर सकना संभव है।

मिशीगन विश्वविद्यालय के ही प्रो. जेम्स मेकानेल ने तो अपने प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध कर दिया कि आहार में हेर फेर करके स्मरण शक्ति और भाव संवेदनाओं को भी कम ज्यादा घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इतना ही नहीं दो व्यक्तियों में स्मृति और अनुभवों का प्रत्यावर्तन भी किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जैसे एक व्यक्ति का रक्त दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कराया जा सकता है और टूटे-फूटे अवयवों को बदल कर उनके स्थान पर नये अंग का प्रत्यारोपण किया जा सकता है। उनका मत है कि अगले दिनों बुद्धि की मन्दता, अकुशलता और मानसिक विकृतियों का उपशमन भी खाद्य पदार्थों की सूक्ष्म शक्ति के आधार पर किया जाने लगेगा और तब मनुष्य उस आधार पर अपनी स्मरणशक्ति, बुद्धिकौशल और सूझ-बूझ को बढ़ाकर व्यक्तित्ववान बन सकेगा।

आत्मिक प्रगति के लिए की जाने वाली सभी साधनाओं में आहार की कारणशक्ति को विकसित करके उसके उपयोग का विधान है। मनुस्मृति में साधकों के लिए भक्ष्य-अभक्ष्य आहार की लम्बी सूची बताई गई है और कहा गया है कि आत्मोन्नति के इच्छुकों को अभक्ष्य आहार अनजाने में भी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा हो भी जाय तो चान्द्रायण स्तर का व्रत करना चाहिए। योगशास्त्रों और साधना ग्रन्थों ने तो अंतःकरण को पवित्र एवं परिष्कृत करने तथा मनः संस्थान को प्रखर प्रतिभाशाली बनाने के लिए सात्विक आहार ही अपनाने को कहा है। गीता में भगवान कृष्ण ने शरीर, मन और भावनाओं पर आहार के संभावित प्रभावों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। आध्यात्मिक प्रगति के आकांक्षी और साधना मार्ग के पथिक के लिए इस बात का निर्देश दिया गया है कि शाकाहारी सात्विक आहार ही अपनाया जाय और उसकी सात्विकता को भी भावनाओं का सम्पुट देकर आत्मिक चेतना के उत्कर्ष में अधिक सहायता दे सकने योग्य बनाया जाय। भगवान का भोग, प्रसाद, पूजा के समय प्रयुक्त नैवेद्य और जल, पंचामृत, यज्ञाग्नि में पकाया गया चरु द्रव्य इसी प्रकार के पदार्थ हैं जिनकी स्थूल विशेषता न दिखाई देने पर भी उनकी सूक्ष्म सामर्थ्य बहुत अधिक होती है।

आहार न केवल स्थूल दृष्टि से पौष्टिक, स्वल्प और सात्विक होना चाहिए, वरन् उसके पीछे न्यायानुकूल उपार्जन और सद्भावनाओं का समावेश भी होना चाहिए तभी वह अन्न मनुष्य के तीनों आवरणों को पोषित कर सकेगा और स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर को विकसित कर सकेगा। तभी वह शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मि दृष्टि से सर्वांगीण विकास कर सकेगा। ❋

टिड्डे बरसात में हरे हो जाते हैं और गर्मी में पीले। इसका कारण किसी छात्र ने अपने अध्यापक से पूछा।

शिक्षक ने समझाया कि बरसात का वातावरण हरा रहता है। उसका प्रभाव टिड्डे का रंग भी अपने अनुरूप बना लेता है। गर्मी के दिनों में सब कुछ सूखा रहता है। सूखापन पीला होता है उसी के अनुरूप टिड्डे भी पीले पड़ जाते हैं।

जो व्यक्ति जैसे वातावरण में रहता है वह भी वैसा ही ढल जाता है।

सतयुगी स्थापना को संकल्पित मानव

जिस प्रकार बाल्यकाल के ,निमित्त निर्मित वस्त्र परिधान यौवनावस्था में उपयुक्त नहीं हो सकते, उसी प्रकार अतीत काल के नियम, रीति रिवाज आज के प्रगतिशील मानव समाज के लिए लाभकारी नहीं सिद्ध हो रहे हैं । कारण तत्कालीन प्रथाएँ - मान्यताएँ, नियम-व्यवस्था जिन्हें मनुष्य ने स्वीकार किया था, वह सब समय की माँगों के अनुरूप थीं और मानव समुदाय को तब इनकी आवश्यकता थी । ऋतु परिवर्तन के अनुरूप मनुष्य अपने खान-पान, परिधान आदि में परिवर्तन कर तालमेल बिठा लेता है । उसने जीवन के इस मूल तत्व को जब भलीभाँति समझ लिया है परिस्थिति एवं प्रकृति के अनुकूल रहकर अथवा उन्हें अपने अनुरूप ढालकर ही जीवित रहा जा सकता है । जीव-जन्तु भी प्रकृति के इस नियम से भिज्ञ हैं और तद्नुरूप अपने में परिवर्तन करते रहते हैं । जिनके स्वभाव में यह गुण नहीं पाये जाते, वे देर तक अपना अस्तित्व बनाये रखने में समर्थ नहीं होते । यही कारण है कि पृथ्वी पर कभी पाये जाने वाले महाकाय डायनोसोर जैसे सरीसृप के नाम एवं अवशेष ही कहीं पुस्तकों के पन्नों पर एवं संग्रहालयों में देखने को मिलते हैं , परिवर्तित प्रवाह के अनुरूप न चल पाने के कारण प्रकृति ने उन्हें नष्ट कर दिया ।

प्रकृति का दूसरा नाम परिवर्तन भी है । सृष्टि में सतत परिवर्तन करते रहना और उसे नवीन स्वरूप प्रदान करना उसका स्वाभाविक गुण है । उन्नति का मूल भी यही है । इन दिनों उसकी परिवर्तन प्रक्रिया में पिछले दिनों की अपेक्षा तीव्रता आई है और वह नूतन सृष्टि-संरचना खड़ी करने के लिए आकुल-व्याकुल है । इसका प्रत्यक्ष प्रभाव मानवी विचारधारा में हो रहे असाधारण परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है । इन्हीं दिनों उज्ज्वल भविष्य की सुखद संभावनाओं से भरी-पूरी एक आदर्शवादी नवीन विचारधारा का उदय हुआ है, जिसने मनीषियों के चिन्तन-मनन की प्रक्रिया में उथल-पुथल मचा दी है । यद्यपि इसकी शुरूआत विगत महायुद्धों के विनाशकारी दृश्यों के साथ हुई थी, जिसने मानवी अन्तराल को झकझोर कर रख दिया था । उस घटना ने लोगों को यह सोचने के लिए विवश कर दिया था कि अतिवादी भौतिक चिन्तन की क्या परिणति होती है । अब जो स्फूर्ति, चेतना और उमंग उभरी है, उसके आधार पर मनुष्य ने अपनी सामर्थ्य को पहचाना और अधिकारों को जाना है । प्राचीन रुढ़िवादी परम्पराओं सकीर्ण विचारधाराओं के शिकंजे में वह अब अधिक दिनों तक जकड़ा नहीं रह सकता । जाग्रत आत्मचेतना ने करवट बदली है और नवीन विचारधारा को-सन्मार्ग को अपनाने और तदनुरूप नई सृष्टि की भव्य समाज की नूतन संरचना में सन्नद्ध होने की आकुलता प्रकट की है ।

तत्ववेत्ताओं का कहना है कि विश्व में अगर कोई शक्तिशाली वस्तु है तो वह है विचार-चिन्तन, शेष सभी पदार्थ नश्वर हैं नष्ट होने वाले हैं । विचारणा ने ही एकमेव अमरत्व पाया है । अतः अब मनुष्य को जिन नवीन विचारणाओं से दिशा मिलने वाली है , उनसे वह समस्त संसार को युग को बदले बिना नहीं रहेगा । वर्तमान भौतिकवादी मान्यताओं, साम्प्रदायिक मान्यताओं, दर्शनों, आर्थिक तथा राजनीतिक ढाँचों-कलेवरों के प्रति उसकी आस्था हटने लगी है, संतोष जाने लगा है । सबके प्रति एक रचनात्मक विद्रोह की आवाज सर्वत्र गूँज उठी है । यह एक विश्वव्यापी महा परिवर्तन का शंखनाद है जो आवश्यक भी है । जीवन सत्ता जब प्रगति की ओर नहीं बढ़ पाती, तो उसकी गति का पतन की ओर मुड़ना स्वाभाविक है । प्रकृति ने प्राणिमात्र को विशेषकर मनुष्य को गतिशीलता इसीलिए प्रदान की है । वर्तमान प्रगति से सन्तुष्ट होकर न बैठना उसकी विशेषता है । जल की धारा सरिता का साथ छोड़ने पर जिस प्रकार अपनी निर्मलता खो बैठती है, उसी प्रकार जीव सत्ता यदि प्रगति का पथ छोड़ देती है तो उसका पतन प्रारंभ हो जाता है । मानव अभ्युदय में उत्कृष्टता की पक्षधर विचारणाओं का महत्वपूर्ण स्थान है ।

स्रष्टा के अन्य सभी निर्माणों, कृतियों की तुलना में मानव भले ही अन्यान्य विशालकाय जीवों से शारीरिक बलिष्ठता में दुर्बल है, फिर भी अपनी मस्तिष्कीय विलक्षणता, आन्तरिक उत्कृष्टता एवं परिश्रम-शीलता के

कारण उसकी श्रेष्ठ रचनाओं में अद्वितीय है। तीनों के समन्वित प्रयोग से वह नवीन दुनिया की रचना कर सकने में समर्थ है। अपनी बुद्धि कौशल के बलबूते आज वह सागर की अतल गहराई से लेकर अनन्त अंतरिक्ष जगत तक का जानकार बन गया है। कल तक जो मानव अपनी अज्ञानता के कारण जंगलों में भटकता और शीत-ताप तक सहन करने तक में सक्षम न था, धीरे-धीरे उसने आज प्रकृति से तारतम्य बिठा लिया और ताप, वाष्प पेट्रोल, विद्युत, ब्रह्माण्डीय किरणों और परमाण्विक शक्ति तक को करतलगत कर लिया प्रकृति को अपना सहायक बना लिया। जिस नूतन चेतना का संचार इन दिनों हुआ है, उसके आधार पर अब उसकी अगली यात्रा दृश्य जगत को छोड़कर अन्तर्जगत की ओर होगी। जीवन तथा उसके मूल्यों का अध्ययन आत्मा के प्रकाश में वह अपने ढंग से करेगा, जिसके साथ ऋषियुगीन प्राचीन अनुभव भी जुड़ा होगा। जीवन भले ही क्षणिक है, किन्तु उसमें नित्यता विद्यमान है। अपनी इस असीम आध्यात्मिक शक्ति का परिचय मनुष्य को मिल चुका है। अन्तराल की महत्ता का, भाव संस्थान की क्षमता का मर्म जान लेने पर वह अपनी क्षुद्रताओं, संकीर्णताओं एवं दोषों को उतार फेंकने और स्वयं का रूपान्तरण कर महानता अपनाने की विशेष योजना को कार्यान्वित करेगा।

सुप्रसिद्ध मनीषी एलिस ए. बेल्ली ने अपनी कृति "पोंडर ऑन दिस" में इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि अन्तर जगत में प्रवेश करने पर मानव यह भलीभाँति जान लेगा कि वह स्रष्टा का ही अंश है और अपने भाग्य का निर्माता भी। भविष्य गठन में इस विचार प्रवाह की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। तब वह मात्र भौतिक उन्नति से ही संतुष्ट न रहेगा और न ही वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक दासताओं में जकड़ा रहेगा, वरन् व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में व्याप्त अज्ञान, अभाव, दुःख-दारिद्रय, भय, अत्याचार आदि से स्वयं जूझेगा ? और उन्हें परास्त कर इस धरती का भविष्य एवं अपने भाग्य का निर्माण खुद अपने हाथों करेगा। इस धरा पर वह ऐसे स्वर्ग को लायेगा जिसका निर्माण उसके द्वारा होगा और पूर्ण दिव्यताओं सद्भावनाओं, सद्इच्छाओं और सत्कर्मों से सुसम्पन्न होगा।

इस नवयुग की विशेषता होगी कि यह नित्य प्रगति की ओर तीव्रता से गतिशील होगा। इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य का आगमन उसी प्रकार सुनिश्चित है, जिस तरह प्रकाश के आने पर तम चला जाता है और रात्रि व्यतीत हो जाने पर स्वर्णिम प्रभात चहुँ ओर फैल जाता है। उनके अनुसार नवयुग का आगमन कहीं बाहर से नहीं, वरन् मनुष्य के अन्दर से सद्विचारणाओं के रूप में सज्ञात भाव के रूप में प्रस्फुटित होगा। किन्तु परिवर्तन की विचारणा ही केवल अपने आप में पर्याप्त नहीं। इसके लिए उस जनमानस को भी तैयार करना होगा, जो अपनी मान्यताओं संकीर्ण विचारधाराओं के मकड़ जाल में अभी भी जकड़ा हुआ है और प्रभातकालीन ब्रह्ममुहूर्त की स्वच्छ प्राणवायु, में सांस लेने से हिचकिचा रहा है। रचनात्मक दिशाधारा अपनाकर ही नूतन ज्ञान प्रवाह से सबको सामूहिक रूप से आलोकित किया एवं प्रगतिशीलता के उच्च आयामों की ओर अग्रसर किया जा सकेगा। सतयुगी विश्व की स्थापना तभी साकार होगी। ✲

एक सेठ के पास बहुत सा सोना चाँदी था। वे उसे जंगल में कहीं गाढ़ते। फिर कुछ दिन बाद देखने जाते। किसी ने निकाल तो नहीं लिया यह जाँचते। किसी ने देख लिया होगा तो उखाड़ लेगा। यह सोच कर उसे जगह बदल कर अन्यत्र गाढ़ देते। बार बार ऐसी ही उलट पलट किया करते।

सेठ जी की गतिविधियों को एक चोर संदेह की दृष्टि से देखा करता था। एक बार उसने चुपके चुपके पीछा किया। जब धनी खड़ा होने लगा तो चोर पेड़ पर चढ़ कर उनकी हरकतें देखने लगा। उसे पता लग गया कि यहाँ धन गाड़ा जा रहा है।

सेठ जी के चले जाने के बाद अँधेरा होते ही चोर ने सारा धन उखाड़ लिया और घर ले गया कई दिन बाद वे अपने धन की निगरानी करने गये। देखा तो पता चला कि कोई सारी सम्पदा उखाड़ ले गया। वे सिर धुनते-धुनते घर गये और दरवाजे पर बैठ कर जोर-जोर से रोने लगे।

मुहल्ले वाले जमा हो गये। बहुत पूछने पर उनने बताया कि किस प्रकार उनकी दौलत चुराली गई। एक मसखरे ने व्यंग करते हुए कहा लालाजी जमीन में गढ़ा धन आपके या और किसी के काम तो आता नहीं था। बेकार पड़ा था। चोर ले गया तो उसे किसी काम में लगायेगा।

जो धन जेवर आदि के रूप में निरर्थक पड़ा रहता है। जिसका कोई उपयोग नहीं होता उसे यदि चोर ले जाय तो क्या बुरा है ?

मानसोपचार की कुंजी अपने ही हाथ में

मानवी सत्ता का ध्रुव केन्द्र मस्तिष्क को माना गया है। सामान्यतः मस्तिष्क के दो भाग होते हैं एक मन और दूसरा अन्तर्मन। मनोविज्ञान की भाषा में इन्हीं को चेतन और अवचेतन के नाम से जाना जाता है। अवचेतन मन ही है जो चेतन मन से शरीर के सम्पूर्ण क्रिया-कलापों का नियंत्रण और संचालन करने का कार्य सम्पन्न कराता रहता है। चूँकि इसका मूल स्रोत मनुष्य की अंतरात्मा है इसलिए स्व-संकेत या सुझाव एवं आत्म-सुधार की प्रक्रिया इस प्रयोजन की पूर्ति में सक्रिय भूमिका निभाती है।

सुझाव शब्द का सीधा संबंध मनुष्य के मनोभावों से होता है जो उसके आचरण की मर्यादाओं को निर्धारित करते और उपयुक्त मार्गदर्शन की व्यवस्था जुटाते हैं। इन मनोभावों को अन्तःकरण में उमड़ने वाली इच्छाओं और उमंगों का प्रतिबिम्ब भी कहा जा सकता है। मनुष्य के विचारों और कार्य पद्धति का निर्धारण इन्हीं के अनुरूप होता रहता है। आत्म सुझाव की प्रेरणाएँ भी यहीं से उभरती हैं।

फ्रांस के सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी ऐमिले कोव ने आत्म-सुझाव की स्व-संकेत की प्रक्रिया पर गहन अनुसंधान किया है। उनके कथनानुसार सांसारिक एवं वाह्य परिस्थितियाँ हर क्षण बदलती रहती हैं और तदनुरूप मनुष्य की मनःस्थिति प्रभावित होती है। कई घटनाएँ जीवन में आशा और प्रसन्नता की किरणें फैलाती हैं तो कई अप्रसन्नता, खीज और निराशा की स्थिति उत्पन्न करती देखी गई हैं। दैनिक जीवन की नब्बे प्रतिशत घटनाओं में मनुष्य अपने मनोभावों को ही प्राथमिकता देता और अभिरुचियों के अनुरूप अपनी कार्यशैली का निर्धारण करता है। सुझाव और सुधार के निर्देशन भी उसी स्तर के मानने को तैयार होता है।

विज्ञापनों में प्रायः जनसाधारण के अन्तर्मन को प्रभावित करने की तकनीक ही अपनाई जाती है। बौद्धिक एवं चेतन मन स्तर तक सीमित रहने वाली प्रचार-प्रसार सामग्री प्रभावशील सिद्ध नहीं हो सकती। अवचेतन मन में प्रदर्शित वस्तुओं के प्रति आकर्षण उभरने पर ही व्यक्ति उसे खरीदने के लिए तत्परता दिखायेगा। वस्तु की मांग भी तभी होती है। अन्यथा चेतन मन में तो इच्छाओं की ललक उठती ही रहेगी। लेकिन इच्छाओं की आपूर्ति हेतु साधन और साहस जुटाने की व्यवस्था अन्तर्मन ही जुटा पाता है। युद्धकालीन संकटग्रस्त परिस्थितियों में हर राष्ट्र प्रचार-प्रसार के माध्यम से नागरिकों की अन्तः चेतना को जगाता और विरोधी ताकतों से जूझने के लिए प्रेरणा उभारता है, फलतः उस देश के लोग राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु मर मिटने तक को तैयार हो जाते हैं। वस्तुतः इसे अन्तर्मन की शक्ति का उभार ही कहना चाहिए।

शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों के संचालन की शक्ति अन्तर्मन यानी अवचेतन मस्तिष्क से ही आती है। एक मोटर चालक के लिए सड़क का मानचित्र उसका बौद्धिक मार्गदर्शक हो सकता है जिससे वह यात्रा संबंधी कठिनाइयों के समाधान का लाभ उठाता है। मार्ग का सही ज्ञान चालक को है तो ही चेतन मन काम करने में सफल हो सकता है। यदि वह दिग्भ्रान्त है तो मार्गावरोध खड़ा होता है। इन भ्रमित कर देने वाली परिस्थितियों में अवचेतन मन ही गन्तव्य स्थान तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होता है। यह स्व-संकेत के सहारे ही पूरा होता है।

अवचेतन मन की परत को थोड़ा सा कुरेदा जाय तो पता चलता है कि आत्म-विश्वास की जाग्रति का केन्द्र बिन्दु यहीं है। माना कि कोई व्यक्ति धूम्रपान की आदत से ग्रसित है और उससे छुटकारा पाना चाहता है तो उसे अन्तर्मन की सद्प्रेरणाओं के स्रोत को उभारना पड़ेगा। "मैं धूम्रपान छोड़ सकता हूँ" की प्रबल धारणा यदि उस क्षेत्र में समाविष्ट हो जाय तो कुछ ही दिनों में उस दुर्व्यसन से आसानी से पीछा छुड़ाया जा सकता है "द पावर आफ औटो-सजेशन" नामक अपनी कृति में प्रख्यात मनोविज्ञानी पीटर फ्लैचर ने अपने प्रयोग परीक्षणों के निष्कर्षों को प्रस्तुत करते हुए बताया है कि अन्तर्मन की गहरी परतों में जब इस तरह का दृढ़ निश्चय जमने लगे तो समझना चाहिए कि दुर्व्यसनों की लत का परित्याग कर सकना अब संभव है।

—फ्लैचर का कहना है कि आत्म–सम्मान की जिज्ञासा सभी व्यक्तियों में समान रूप से पाई जाती है, जो उसकी मूल सत्ता का आभास कराती है। लेकिन स्मृतियों के धुँधलेपन के कारण वह उसे भूल बैठता है और तरह–तरह के दुर्व्यसनों का शिकार होता चला जाता है। इस तथ्य का रहस्योद्घाटन उनने अपने मित्र के उदाहरण के माध्यम से किया है। उनका वह मित्र एक सरकारी अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी के पद पर कार्यरत था जो अपनी धूम्रपान की आदत से परेशान था प्रयत्न करने के बाद भी लत नहीं छूट रही थी। संयोगवश उन्हें उसी अस्पताल का अधीक्षक नियुक्त कर दिया गया। अस्पताल की नियमावली के अनुसार कार्य के समय धूम्रपान वर्जित होता है। यद्यपि अधीक्षक महोदय को अपने धूम्रपान के इस दुर्व्यसन का परित्याग करने में काफी कष्ट का अनुभव हुआ फिर भी आत्म सम्मान की अभिलाषा ने उनकी यह लत छुड़ा कर ही रखी। नेतृत्व की क्षमता पर आँच न आने देने के लिए उनने इस तरह का दृढ़ निश्चय अपने अन्तर्मन में जगाया। इस प्रकार की स्व–शिक्षण की स्व–सुझाव की प्रक्रिया ने एक सप्ताह के भीतर ही उनको दुष्प्रवृत्ति छोड़ने और नयी प्रेरणाएँ ग्रहण करने को विवश कर दिया।

शरीर और मन का अन्योन्याश्रित संबंध है। मानसिक संवेगों का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जम्हाई मन को अनुभव होती है किन्तु इसका प्रभाव मानवी काया पर पड़ता है। रक्त शिराओं में जलन जैसी अनुभूति होने लगती है। कुछ लोग तो ऐसी स्थिति में उलटी मिचली का शिकार बनते हैं। बेहोशी और मूर्छा आने पर हृदय फेंफड़े, पाचन–संस्थान और ग्रन्थियों के स्राव में व्यतिरेक उत्पन्न होते देखा गया है। वैज्ञानिकों द्वारा किये गये परीक्षणों से यह तथ्य उभर कर आया है कि शरीर के किसी भी भीतरी अंग–अवयव पर यदि ध्यान केन्द्रित किया जाय तो उनकी क्रियाशीलता स्वतः अवरुद्ध होने लगती है, हृदय की गति पर भी यदि निरन्तर चिन्तन करते रहा जाय तो उसकी धड़कनों में व्यतिक्रम उत्पन्न होता है। चिन्तातुर व्यक्ति को 'नर्वस डिस्पेप्सिया' यानी अपच की शिकायत प्रायः बनी ही रहती है। मस्तिष्क के चेतना प्रवाह अवचेतन मन की गरिमा पर जब विचार किया जाता है तो प्रतीत होता है कि जीवन का अस्तित्व, स्वरूप और भविष्य भी उसी केन्द्र के साथ जुड़ा हुआ है। स्व–संकेत, आत्म–सुझाव एवं आत्म सुधार की क्षमताओं का प्रयोग इसी क्षेत्र में बन पड़ता है। विचार प्रवाह में क्रमबद्धता का उपक्रम बिठाकर इस पर नियंत्रण साधा जा सकता है। कुछ विचार तो स्वभावगत होते हैं जो जन्म जन्मान्तरों से चले आते हैं और कुछ वंशानुगत। स्व–संकेत एवं स्व–सम्मोहन प्रक्रिया को अपनाकर चिन्तन की विकृति को आसानी से दूर करके सद्विचारों का बीजारोपण कर सकना संभव है।

प्रख्यात इंजीनियर श्री विश्वेसरैया एक गाँव में होकर निकले। वहाँ गाँव में एक पाठशाला थी। छात्रों अध्यापकों ने उनके आगमन की बात सुनी तो उनके मुँह से कुछ सुनने के लिए अधीर हो उठे।

अनुनय विनय सुन कर वे सहमत हो गये। कुछ देर रुक कर उनने थोड़ा सा प्रवचन दिया और फिर आगे बढ़ गये।

एक सप्ताह भी न बीतने पाया था कि श्री विश्वेसरैया का एक पत्र गाँव की पाठशाला के नाम आया कि वे इसी सप्ताह वहाँ नया प्रवचन देने आ रहे हैं। सभी को आश्चर्य था कि उस दिन तो इतने आग्रह के बाद इतना थोड़ा समय दे पाये थे आज अपनी ओर से इतनी दूर चलकर क्यों आ रहे हैं।

वे नियत समय पर पहुँचे। भाषण दिया। सब ही को दुबारा आने का कारण बताते हुए उनने कहा "उस दिन बिना तैयारी का भाषण था बिना पूर्ण तैयारी किये कोई भी काम ठीक से नहीं बन पड़ता। उस दिन मेरा भाषण भी ऐसा ही अव्यवस्थित था। अब मैं एक सप्ताह की तैयारी के बाद सही भाषणक्रम बना सका हूँ। जीवन भर मेरा हर काम में यही क्रम रहा है। उसे मैं बिगाड़ना नहीं चाहता था सो भूल सुधार के लिए दुबारा आया।"

कल्पनाओं की शक्ति संकेत प्रक्रिया पर ही निर्भर करती है। शर्मीलापन, दब्बूपन, संकोची तथा शीघ्र उत्तेजित हो उठने का मानसिक रोग कल्पनाओं में ही घुला रहता है। आत्म–सुझाव से स्व–संकेत से चिरकालीन कुसंस्कारों का क्षय तो होता ही है। साथ ही दोषपूर्ण चिन्तन की पद्धति में भी सुधार दिखाई देने लगता है। अवचेतन अर्थात् अन्तर्मन की क्षमता को विकसित किया जा सके तो समस्त बुराइयों, दुष्प्रवृत्तियों पर सरलतापूर्वक विजय पाई जा सकती है। प्रगति के, प्रतिभा–उन्नयन के नवीन द्वार–खुल सकते हैं। *

प्रकृति रूठी तो प्रलयंकारी दृश्य दीखेंगेही

मनुष्य ने जितने अधिक प्रयास निर्माण के किये हैं, उससे कहीं अधिक उसने विध्वंस के संरजाम खड़े किये हैं। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन धरती को जगह-जगह पर खोखली बनाने से लेकर पर्यावरण में विषाक्तता भरने और असंतुलन पैदा करने में उसने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है। यही कारण है कि प्रकृति में जितने अप्रत्याशित परिवर्तन इन दिनों दिखाई पड़ रहे हैं उतने पिछले कई सौ वर्षों में कभी घटित नहीं हुए। उसकी क्रुद्धता को विविध विक्षोभों के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। तुफान, बाढ़, महामारी, ज्वालामुखी विस्फोट, भूकम्प आदि विपदायें प्रकृति के साथ किये गये अनावश्यक छेड़छाड़ के दुष्परिणाम हैं। भूकम्पों की प्रतिवर्ष बढ़ती संख्या प्रकृति के विक्षुब्ध और कुपित होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। प्राकृतिक विपदाओं में इसे सबसे अधिक विनाशकारी और हानिकारक विपत्ति कहा जा सकता है।

यों तो भूकम्प की कहानी पृथ्वी के जन्म के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। जापानी साहित्य में वहाँ की प्राचीन सभ्यता में 'भूकम्प देवता' की पूजा-उपासना का सुविस्तृत उल्लेख मिलता है। उस मान्यता के अनुसार 'मनुष्य के उच्छृंखलतापूर्ण व्यवहार से कुपित होकर भूकम्प देवता अपना ध्वंशात्मक स्वरूप प्रकट करते और मनुष्य सहित समूचे प्राणि समुदाय को दंडित करते-त्रास देते हैं।' विश्व के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में भी इस संबन्ध में अलग-अलग तरह की मान्यतायें एवं धारणायें प्रचलित हैं, लेकिन उनके वैज्ञानिक कारण उपलब्ध न होने से उन्हें प्रामाणिक नहीं माना गया। प्रख्यात ग्रीक दार्शनिक अरस्तू का कहना है कि प्रकृति के साथ जब कभी मनुष्य का व्यवहार असहनीय हो जाता है तो वह पृथ्वी के भीतर भरी वाष्प को बाहर निकालकर दुर्बल स्थानों पर विस्फोट कर देती है।

चीन की पौराणिक गाथाओं के अनुसार पृथ्वी भी मनुष्य की तरह सांस लेती है। मनुष्य की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया में व्यवधान पड़ने पर जिस प्रकार से उसका दम घुटने लगता है और प्राणों पर बन आती है, ठीक उसी तरह धरती की श्वसन प्रक्रिया में भी व्यतिक्रम उत्पन्न होने पर भूकम्प आने लगते हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स एफ. रिक्टर ने भूकम्पमापी यंत्र की खोज इसी आधार पर की है जिसे 'रिक्टरस्केल' के नाम से जाना जाता है। पृथ्वी में प्रतिवर्ष १४ लाख कंपन होते हैं, पर उनमें से मात्र ६ हजार कम्पनों को ही मापा जा सकता है। अब इन कंपनों की संख्या में तीव्रता आती जा रही है और हर वर्ष आने वाले कुल भूकम्पों की संख्या में अभिवृद्धि होती जा रही है। इनकी तीव्रता भी बढ़ रही है जो जन, धन की असाधारण हानि का कारण बनती है।

वैज्ञानिकों को, अंतरिक्ष विज्ञानियों, खगोल शास्त्रियों एवं भौतिक विदों ने अपने-अपने ढंग से किये गये शोध अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है कि पृथ्वी सहित हम सभी इन दिनों एक विशिष्ट परिवर्तन काल से गुजर रहे हैं। पर्यावरण में घटित हो रहे अप्रत्याशित परिवर्तन कुछ ऐसा संकेत दे रहे हैं कि आने वाला समय असामान्य है जिसमें समूची मानव जाति का भाग्य और भविष्य जुड़ा हुआ है। जब कभी मानवी उद्दण्डता अपनी सीमा को पारकर प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करती दीखती है तो प्रकृति उसे अपने ढंग से सबक सिखाती है। छोटे-मोटे प्रकोपों से जब काम नहीं चलता तो वह कहीं आग उगलने लगती है, तो कहीं धरती हिलने और फटने लगती है। भूकंप एवं ज्वालामुखी विस्फोटों के प्रलयंकारी इतिहास इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि इस प्रकार की विभीषिकाओं के लिए मनुष्य ही जिम्मेदार है। अलसल्वाडोर, कोलम्बिया, मैक्सिको, रूस, भारत, मोरक्को, ईरान, चिली, अलजीरिया आदि देशों में आये भूकंपों का इतिहास कोई पुराना नही है, दो दशकों बाद अब इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी ही हुई है। लाखों व्यक्ति काल कवलित हुए एवं अपार सम्पदा की क्षति हुई है।

इन दिनों सैकड़ों वर्ष पुराने प्रसुप्त पड़े ज्वालामुखी फिर से आग उगलने लगे हैं। इससे जन जीवन की हानि तो होनी ही है, भौगोलिक संरचनायें भी बदलेंगी। वस्तुतः प्रकृति परमात्मा की व्यवस्थापिका शक्ति है अच्छा हो हम प्रकृति माता के निर्देश परम्परा का निर्वाह करें और उसे क्रुद्ध करके वह परिस्थिति न पैदा करें जिससे इस लोक की शान्तिदायक गरिमा घटे और धरतीवासियों पर विपत्ति के बादल टूटें। *

परम पूज्य गुरुदेव की—:

श्रावणीपर्व की विशेष कार्यकर्त्ता गोष्ठी

इस माह "पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी" प्रसंग के अन्तर्गत उनके द्वारा आज से तीन वर्ष पूर्व शांतिकुंज में कार्यकर्ताओं के बीच विशेष गोष्ठी की चर्चा की जा रही है। वे सभी प्रसंग जो इस चर्चा में आए हैं, आज भी उतने ही सामयिक हैं, जितने उस समय थे। सभी परिजनों से उस अवसर विशेष की भागीदारी करने के उद्देश्य से इस माह इस विशिष्ट गोष्ठी का वर्णन प्रस्तुत है।

हमारे तुम सब के बीच आने का एक ही उद्देश्य है कि हम समाज को सही व्यक्ति देकर जायँ। व्यक्ति होते तो यह सारा समाज नया हो जाता। सारे समाज का कायाकल्प हो जाता। पचास आदमी गाँधी के, बुद्ध के साथ थे। वे युग परिवर्तन कर सके क्योंकि उनके पास काम के इन्सान थे। विवेकानन्द के साथ निवेदिता थीं और कुछ काम के व्यक्ति थे। आज जहाँ देखो, वहीं जानवर नजर आते हैं। यदि काम के इंसान होते तो जमीन पलट दी गयी होती। तुम सब यहाँ आए हो तो काम के आदमी बन जाओ। हमने जीवन भर व्यक्ति के मर्म को छुआ है व अपना ब्राह्मण स्वरूप खोलकर रख दिया। नतीजा यह कि हमारे साथ अनगिनत आदमी जुड़े। तुम यदि सही अर्थों में जुड़े हो तो अपना भीतर वाला हिस्सा भी लोकसेवी का बनालो व समाज के लिए कुछ कर डालने का संकल्प ले डालो।

यहाँ शांतिकुंज में न्यूनतम पाँच सौ सशक्त कार्यकर्ताओं की सही मायने में आदमियों की जरूरत है। आदमियों के लिए जमीन प्यासी है व आकाश प्यासा है। यदि पूर्ति हो जाय तो सारा सपना हमारा पूरा हो जाय। हमने ठहरने-खाने पीने की सारी व्यवस्था कर दी है। यहाँ आने वाला हर व्यक्ति अध्यात्म के, समाज सेवा के रंग में रंगकर जाय, यही हमारा उद्देश्य है। यह काम अकेले संभव नहीं है। तुम्हारा सहयोग इसके लिए हमें चाहिए। इसके लिए हमें तुम से कुछ भी नहीं व्यक्तित्व की साधना व तुम्हारा निष्काम समर्पण चाहिए।

गाँधी जी ने अपने साथ में रहने वाले सभी व्यक्तियों का व्यक्तित्व बना दिया था। वे, जो पूरी तरह जुड़े धन्य हो गये। श्रेय सौभाग्य के अधिकारी बने। तुम भी सही अर्थों में जुड़ जाओ तो तुम सबका व्यक्तित्व बने, सभी सँवर जाएँ। आज से ६३ वर्ष पूर्व हमने वसंत पर्व पर अपने भगवान से दीक्षा ली थी। यह कहा था कि अब "मैं— समाप्त होता हूँ व "आप" जीवित होते हैं। आपकी इच्छा मुख्य मेरी इच्छा गौण। समर्पण किया था हमने। अनगिनत उसकी उपलब्धियाँ हैं। हमारा व्यक्तित्व हमारी मार्गदर्शक सत्ता ने शानदार बना दिया। तुम सबका भी ऐसा ही बन जाए यदि तुम मन व आत्मा से समर्पण कर दो। यह हम कह इसलिए रहे हैं कि कहीं भावावेश में घर छोड़कर आए हो व मनमें तुम्हारे दुःख क्लेश बना रहे, इसके स्थान पर एक ही बार में सारी स्थिति स्पष्ट हो जाए। कहीं के तो बन सको तुम।

हमने जो समर्पण किया, बदले में हमारी मार्गदर्शक सत्ता ने हमें स्वयं को सौंप दिया। हमारे अंदर प्रभावोत्पादकता भरदी। वाणी में, लेखनी में, व्यक्तित्व में, दैनन्दिन आचरण में। यही तुम्हारे अंदर भी आ जाएगी। भगवान के हम कोई संबंधी थोड़े ही हैं, जो उनने हमारे साथ कोई विशेष पक्षपात किया हो। तब तुम्हें भी क्यों नहीं वही सब मिल सकता है जो हमें मिला। बल कसौटी एक ही "अहं" को गलाना-विसर्जन, समर्पण जब तक अहंकार जिन्दा है, आदमी दो कौड़ी का है। जिस दिन यह मिट जाएगा आदमी बेशकीमती हो जाएगा। 'अहं' ही है, जिसके कारण न सिद्धांत, न सेवा, न आदर्श आ पाते हैं। व्यक्ति लोकसेवा के क्षेत्र में प्रवेश करके भी उच्छृंखल स्तर का अनगढ़ बना रहता है। तुम्हें ईसा मसीह की बात सुनाता हूँ। उनके शिष्यों ने उनसे

कहा कि हम भी आपके समान महान बड़ा बनना चाहते हैं । हम क्या करें ? तो उनने एक ही जवाब दिया । बच्चो, जीवन भर मैं तिनका बना., विनम्र बना, गला तथा इसीलिए इतने बड़े वृक्ष के रूप में विकसित हो सका । अपनी इच्छा समाप्त कर दी तो सही अर्थों में बड़े बन गए । पहले तुम सब भी तिनके के समान छोटे बनो । तुम वैसा बन गए तो पेड़ भी बन सकोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है । वास्तव में सेण्टपाल भी इसी प्रकार सच्चे ईसाई थे व ईसा के बाद विकसित हुए । उनकी पीढ़ी के दूसरे महापुरुष वे विनम्रता-सेवाभावना निरहंकारिता के कारण ही बने ।

व्यक्ति को पहचानने की एक ही कसौटी है कि उसकी वाणी घटिया है या बढ़िया । व्याख्यान कला अलग है । मंच पर तो सभी शानदार मालुम पड़ते हैं । प्रत्यक्ष संपर्क में आते ही व्यक्ति नंगा हो जाता है । जो प्राण वाणी में है वही परस्पर चर्चा-व्यवहार में परिलक्षित होता है । वाणी ही व्यक्ति का स्तर बताती है । व्यक्तित्व को बनाने के लिए वाणी की विनम्रता जरूरी है । प्याज खाने वाले के मुँह से, शराब पीने वाले के मुँह से जिस प्रकार गंध आती है, पायरिया वाले मसूड़े के मुँह से जो बदबू आती है- वाणी की कठोरता ठीक इसी प्रकार मुँह से निकलती है । अशिष्टता छिप नहीं सकती । यह वाणी से पता चल ही जाती है । अनगढ़ता मिटाओ, दूसरों का सम्मान करना सीखो । तुम्हें प्रशंसा करना आता ही नहीं मात्र निन्दा करना आता है । व्यक्ति के अच्छे गुण देखो, उनका सम्मान करना सीखो । तुरंत तुम्हें परिणाम मिलना चालू हो जाएँगे । वाणी की विनम्रता का अर्थ चाटुकारिता नहीं है । फिर समझो इस बात को । कतई मतलब नहीं है चापलूसी का वाणी की मिठास से । दोनों नितान्त भिन्न चीजें हैं । दूसरों की अच्छाइयों की तारीफ करना, मीठी वाणी बोलना एक ऐसा सद्गुण है जो व्यक्ति को चुम्बक की तरह खींचता व अपना बनाता है । दूसरे सभी तुम्हारे अपने बन जाएँगे, यदि तुम यह गुण अपने अंदर पैदा कर लो । इसके लिए अंतः के अहंकार को गलाओ । अपनी इच्छा, बड़प्पन, कामना, स्वाभिमान को गलाने का नाम समर्पण है, जिसे तुमसे करने को मैंने कहा है व इसकी अनन्त फलश्रुतियाँ सुनाई हैं । अपनी इमेज विनम्र से विनम्र बनाओ मैनेजर की, इन्चार्ज की, बॉस की नहीं बल्कि स्वयं सेवक की । जो स्वयं सेवक जितना बड़ा है, वह उतना ही विनम्र है, उतना ही महान बनने के बीजांकुर उसमें हैं । तुम सबमें वे मौजूद हैं । अहं की टकराहट बंद होते ही वे विकसित होना आरंभ हो जाएँगे । तुमने हम से दीक्षा तो ली है, पर यह अपने अंदर टटोलो कि तुमने समर्पण किया कि नहीं । यही पर्यवेक्षण इस श्रावणीपर्व पर अपने अंतरंग का करो ।

हमारी एक ही महत्वाकांक्षा है कि हम सहस्रभुजा वाले सहस्रशीर्षा पुरुषः बनना चाहते हैं । तुम सब हमारी भुजा बन जाओ, हमारे अंग बन जाओ यह हमारे मनकी बात है । गुरु-शिष्य एक दूसरे से अपने मनकी बात कहकर हलके हो जाते हैं । हमने अपने मनकी बात तुमसे कह दी । अब तुम पर निर्भर है कि तुम कितना हमारे बनते हो । पति-पत्नी की तरह गुरु व शिष्य की आत्मा में भी परस्पर ब्याह होता है, दोनों एक दूसरे से घुलमिल कर एक हो जाते हैं । समर्पण का अर्थ है दो का अस्तित्व मिट कर एक हो जाना । तुम भी अपना अस्तित्व मिटाकर हमारे साथ मिला दो व अपनी क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं को हमारी अनन्त आध्यात्मिक महत्वाकाक्षांओं में विलीन कर दो । जिसका अहं जिन्दा है, वह वेश्या है । जिसका अहं मिट गया वह पतिव्रता है । देखना है कि हमारी भुजा, आँख, मस्तिष्क बनने के लिए तुम कितना अपने अहं को गला पाते हो । इसके लिए निरहंकारी बनो । स्वाभिमानी तो

सेठ जमनालाल बजाज वर्धा के प्रख्यात उद्योगपति थे । कारोबार की देखभाल करते हुए भी वे गाँधी जी के पाँचवे पुत्र थे और उनके निर्देशों पर अपनी गतिविधियाँ विनिर्मित करते रहे । उन्होंने गाँधीवादी प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने के लिए साधन जुटाने में प्राणपण से प्रयत्न किया । स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए वे सम्पन्न लोगों से लाखों की राशि एकत्रित करने में सफल होते रहे । गाँधी जी मजाक में उन्हें कामधेनु कहते थे ।

श्री बजाज ने जो कमाया उसे मुक्त हस्त से सार्वजनिक प्रवृत्तियों को सींचने में खर्च किया ।

सम्पन्नता और सादगी का समन्वय देखते ही बनता था । जेल में उन्हें उच्च श्रेणी दी गई तो भी उनने अस्वीकार करके साधारण सत्याग्रहियों की तीसरी श्रेणी में ही स्थानान्तरण करा लिया ।

होना चाहिए पर निरहंकारी बनकर। निरहंकारी का प्रथम चिन्ह है वाणी की मिठास।

वाणी व्यक्तित्व का प्रमुख हथियार है। सामने वाले पर वार करना हो तो तलवार नहीं, कलाई नहीं, हिम्मत की पूछ होती है। हिम्मत न हो तो हाथ में तलवार हो भी तो बेकार है। यदि वाणी सही है तो तुम्हारा व्यक्तित्व जीवन्त हो जाएगा बोलने लगेगा व सामने वाले को अपना बनालेगा। अपनी विनम्रता दूसरों का सम्मान व बोलने में मिठास यही व्यक्तित्व के प्रमुख हथियार हैं। इनका सही उपयोग करोगे तो व्यक्तित्व वजनदार बनेगा।

तुम्हीं को कुम्हार व तुम्हीं को चाक बनना है। हमने तो अनगढ़ सोना-चाँदी ढेरों लाकर रख दिया है, तुम्हीं को साँचा बनाकर सही सिक्के ढालना है। साँचा सही होगा तो सिक्के भी ठीक आकार के बनेंगे। आज दुनिया में पार्टियाँ तो बहुत हैं पर किसी के पास कार्यकर्ता नहीं हैं। 'लेबर' सबके पास है पर समर्पित कार्यकर्ता जो साँचा बनता है व कई को बना देता है अपने जैसा, कहीं भी नहीं है। हमारी यह दिल्ली ख्वाहिश है कि हम अपने पीछे कार्यकर्ता छोड़ कर जाएें। इन सभी को सही अर्थों में 'डाई' एक साँचा बनना पड़ेगा तथा वही सबसे मुश्किल काम है। रॉमेटेरियल तो ढेरों कहीं भी मिल सकता है पर "डाई" कहीं-कहीं मिल पाती है। श्रेष्ठ कार्यकर्ता श्रेष्टतम "डाई" बनता है। तुम सबसे अपेक्षा कि अपने गुरु की तरह एक श्रेष्ठ साँचा बनोगे।

तुमसे दो और अपेक्षा। एक श्रम का सम्मान। यह भौतिक जगत का देवता है। मोती हीरे श्रम से ही निकलते हैं। दूसरी अपेक्षा यह कि सेवाबुद्धि के विकास के लिए सहकारिता का अभ्यास। संगठन शक्ति सहकारिता से ही पहले भी बढ़ी है, आगे भी इसी से बढ़ेगी।

हमारे राष्ट्र का दुर्भाग्य यह कि श्रम की महत्ता हमने समझी नहीं। श्रमका माद्दा इस सब में असीम है। हमने कभी उसका मूल्यांकन किया ही नहीं। हमारा जीवन निरन्तर श्रम का ही परिणाम है। बीस-बीस घण्टे तन्मयतापूर्वक श्रम हमने किया है। तुम भी कभी श्रमकी उपेक्षा मत करना। मालिक बारह घण्टे काम करता है, नौकर आठ घण्टे तथा चोर चार घण्टे काम करता है। तुम सब अपने आप से पूछो कि हम तीनों में से क्या हैं। जीभ चलाने के साथ कठोर परिश्रम करो, अपनी योग्यताएँ बढ़ाओ व निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ते जाओ।

दूसरी बात सहकारिता की। इसी को पुण्य परमार्थ, सेवा उदारता कहते हैं। अपना मन सभी से मिलाओ। मिलजुल कर रहना, अपना सुख बँटना, दुःख बँटाना सीखो। यही सही अर्थों में ब्राह्मणत्व की साधना है। साधु तुम अभी बने नहीं हो। मन से ब्राह्मणत्व की साधना करोगे तो पहले ब्राह्मण बनो। साधु अपने आप बन जाओगे। पीले कपड़े पहनते हो कि नहीं, पर मन को पीला कर लो। सेवाबुद्धि का, दूसरों के प्रति पीड़ा का, भावसंवेदना का विकास करना ही साधुता को जगाना है। आज इस वर्ष श्रावणी पर्व पर तुमसे कुछ अपेक्षाएँ हैं। आशा है तुम इन्हें अक्षय पूरा करोगे व हेमाद्रि संकल्प के साथ ही गुरु जी की भुजा आँख व पैर बन जाने का संकल्प लोगे। यही आत्मा की हमारी वाणी है जो तुम से कुछ कराना चाहती है, इतिहास में तुम्हें अमर देखना चाहती है। देखना है कितना तुम हमारी बात को जीवन में उतार पाते हो।

हमारी बात समाप्त। ✻

पत्नी और बच्चों को अनाथ छोड़कर ही एक व्यक्ति घर से भाग निकला आत्म कल्याण के लिए। किसी संत के पास जाकर वह भगवत्प्राप्ति का उपाय पूछने लगा। उस व्यक्ति ने अपने त्याग की कहानी सुनाते हुये यों कहा-

मेरी पत्नी उस समय सो रही थी, एकाएक बच्चा चीखा तो मुझे लगा अब पत्नी जाग पड़ेगी और मेरा घर से निकलना कठिन हो जायेगा पर पत्नी ने बच्चे को छाती से लगाया बच्चा चुप हो गया। मैं चुपचाप निकल आया। महात्मन्! अब संसार की मोह माया में फँसना नहीं चाहता।

साधु बोले-मूर्ख दो भगवान तो तेरे घर में ही बैठे हैं, जिन्हें तू छोड़ आया। जा! जब तक तू उनकी सेवा नहीं करेगा, तब तक तेरा उद्धार नहीं। त्याग कर्तव्यों का नहीं अंतःकरण के विकारों का किया जाता है।

शक्ति साधना वर्ष के अखण्ड जप प्रधान आयोजन

वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड का गहन अध्ययन किया और ऐसे अद्भुत रहस्यों का पता लगाया, जिनकी चर्चा किसी तिलस्मी घटना जैसी लगेगी । ऐसे ग्रह हैं, जिनके एक मुट्ठी द्रव्य का भार एक हजार पृथ्वियों के वजन से भी अधिक होगा । ऐसे नक्षत्र हैं, जिनके एक-एक कण अपने आप में सम्पूर्ण सौर मंडल को विद्युत आपूर्ति कर सकने में समर्थ हैं, ऐसे प्रकाश कण हैं, जो सेकण्ड के अरब भाग में सारी सृष्टि की परिक्रमा करके अपने मूल स्थान पर लौट आते हैं । यह सब प्रत्यक्ष देखा तो नहीं जा सकता पर है, नितान्त यथार्थ और प्रयोगशाला में सिद्ध होने योग्य ।

हमारे ऋषियों का कथन है कि मनुष्य काया में विद्यमान वैभव भी उपरोक्त कथन से कम नहीं, अपितु हजार गुने अधिक महत्वपूर्ण हैं । इसके एक-एक कोश में एवरेस्ट जैसी पर्वत श्रृंखलाएँ सूर्य जैसे विद्युत ट्रान्सफार्मर और गंगा-यमुना जैसी विशाल नदियाँ प्रवाहमान हैं । मनुष्य का दुर्भाग्य है कि वह अपने ही भीतर छिपी इस विराट् सम्पदा को पहचान नहीं पाता, उसके लिए वह उसी तरह भटकता घूमता है, जैसे किसी सड़क के किनारे भीख माँगने वाले के घर खजाना गड़ा पड़ा हो ।

आज व्यक्तिगत जीवन का भटकाव, पारिवारिक जीवन में स्वार्थ और सामाजिक जीवन में अपराध इसलिए बढ़ रहे हैं कि मनुष्य बाह्य साधनों में सुख ढूँढ़ने में भटक गया है, इन्द्रियों की ललक उसे बारूदी फुलझड़ी की तरह थोड़ा स्वाद देकर शरीर को खोखला कर देती है । जर्जर शरीर बीमारियों का घर होता है, सो वे भाग कर आतीं उसमें अपना डेरा जमाती हैं । स्वार्थ ऐसा विग्रह है जो लोगों को अपनों से भी छीन-झपट लेने में लज्जा अनुभव नहीं करने देता । धन ऐसी मृगमरीचिका है, जिसके पीछे भटकता इन्सान एक क्षण को भी शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता । समाज के विग्रह और विपन्नताएँ इसीलिए हैं कि वह बाह्य साधनों के पीछे अंधी दौड़ लगा रहा है जब कि कस्तूरी मृग की तरह प्रगति और प्रसन्नता के सभी साधन मनुष्य के अन्तःकरण में गहराई तक समाए हुए हैं ।

आत्मिक सम्पदा की प्राप्ति का एक ही रास्ता है अन्तर्मुखी होना । जीवन में साधना का समावेश मनुष्य का इतना बड़ा सौभाग्य है, जिस पर सृष्टि का सारा वैभव न्योछावर किया जा सकता है । उससे न केवल व्यक्ति को सुख-शान्ति मिलती है अपितु सारे समाज की प्रगति और प्रसन्नता का मार्ग प्रशस्त होता है । परम पूज्य गुरुदेव ने साधना को ही युग परिवर्तन का आधार माना था । इसीलिए शान्तिकुंज की स्थापना हुई थी । साधनाओं को विज्ञान सम्मत प्रतिपादित करने के लिए ब्रह्मवर्चस् की स्थापना का उद्देश्य भी यही था कि न केवल उन लोगों को, जिनमें पहले से श्रद्धा के संस्कार हैं अपितु बुद्धिजीवी वर्ग को भी साधना की कक्षाओं मे प्रवेश दिलाया जाये इसके बिना न तो मानवीय सुख-शान्ति की कल्पना की जा सकती है और न मनुष्य के पतन-पराभव की ओर बढ़ते हुए कदम रोके जा सकते हैं । समग्र परिवर्तन का एक मात्र आधार-उपासना-साधना आराधना का अवलम्बन ही है ।

महाप्रयाण से पूर्व परम पूज्य गुरुदेव ने वंदनीया माता जी से एक दिन कहा था-परमहंस रामकृष्ण के देह विसर्जन के पश्चात् उनकी ही आज्ञा से माँ शारदामणि ने ३० वर्ष तक श्रीरामकृष्ण मिशन को संरक्षण दिया-संचालन किया था, मैं चाहता हूँ कि इस मिशन की प्रत्यक्ष देख-भाल तुम करो, प्रकृति को बदलने का परोक्ष कार्य हम अपनी कारण सत्ता से सम्पन्न करेंगे । वंदनीया माता जी ने आशंका व्यक्त की कि इतना बड़ा भार उठाना मेरे लिए कैसे संभव होगा ? तो उन्होंने आश्वस्त किया, यह शक्ति तुम्हें साधना से मिलेगी । आज मिशन का सारा गतिचक्र इसी परिधि में घूम रहा है ।

परम पूज्य गुरुदेव की प्रथम पुण्य तिथि पर पाँच दिन का अखण्ड जप-उच्चस्तरीय साधना में प्रवेश का प्रथम पड़ाव था, जिसमें २४ हजार परिजनों ने

भावनापूर्वक भाग लिया। एक बार में २४०० परिजन अखण्ड जप में बैठते थे। २४ घंटे में प्रायः पाँच करोड़ अर्थात् ५ दिन में २४ करोड़ गायत्री मंत्र जप का एक ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान शक्ति स्वरूपा वंदनीया माताजी के संरक्षण में सम्पन्न हुआ। उन्होंने तभी इस वर्ष को शक्ति साधना वर्ष घोषित किया और पूरे वर्ष न केवल समूचे देश भर में अपितु विदेशों में भी इसी तरह के तीन-तीन दिवसीय साधना प्रधान गायत्री महामंत्र के २४००० अखण्ड जप आयोजन सम्पन्न करने की घोषणा की। देवशक्तियों की अनुदान वर्षा ऐसे महापुरश्चरणों से ही संभव होती है। इतनी बड़ी संख्या में यह आयोजन सम्पन्न करने के लिए इस वर्ष २४० टोलियाँ निकालने और सभी २४ प्रान्तों में शक्तिसाधना का आलोक जगाने की तैयारी की गई है। प्राचीनकाल में ऋषि आश्रमों में स्थापित अखण्ड अग्नियों से गार्हपत्याग्नियाँ सारे देश में जाती थीं। जिस वृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को बोध हुआ था, उस बोधि (वट) वृक्ष की शाखाएँ सारे विश्व में गई थीं उसी तरह प्रथम पुण्य तिथि पर सम्पन्न अखण्ड जप की ऊर्जा को सारे देश भर में इसी वर्ष पहुँचा देने का बड़ा निश्चय किया गया है।

यह अनुग्रह-अनुदान वर्षा कार्यक्रम-३-३ दिन के रखे गये हैं। टोली जिस दिन पहुँचेगी, उस दिन सायंकाल सर्वप्रथम पर्व निर्धारित साधना स्थल की स्टेज पर देव साक्षी स्वरूप परम पूज्य गुरुदेव वंदनीया माताजी के चित्र एवं अखण्डदीप की विधिवत् वेदमंत्रों के साथ स्थापना की जायेगी। पूजा अर्चना के पश्चात् तीन दिवसीय साधना के अनुबंध बताये और संकल्प कराये जाएँगे और परम पूज्य गुरुदेव के स्थूल शरीर की सिद्धियों-शक्तियों और कार्यक्रमों पर प्रकाश डालने वाला प्रथम प्रवचन सम्पन्न होगा। जल यात्रा, कलश स्थापन कार्यक्रम टोली पहुँचने से पूर्व स्थानीय स्तर पर सम्पन्न किए जाएँ। पहले दिन मात्र इतना ही कृत्य सम्पन्न होगा।

अगले दिन अर्थात् द्वितीय दिन प्रातःकाल ५ बजे घंटी बजेगी एक घंटे श्रद्धांजलि समारोह के गीतों का लाउडस्पीकर पर मंद ध्वनि में प्रसारण होगा। ६ बजे आरती-स्तवन वंदनीया माताजी के स्वर में, तत्पश्चात् पवित्रीकरण आदि पंचोपचार, फिर परम पूज्य गुरुदेव की वाणी में स्थूल शरीर की ध्यान साधना और अमृत वचन, उसके तुरंत पश्चात् शंख ध्वनि के साथ अखंड जप प्रारम्भ होगा। यह जप सूर्योदय से प्रारम्भ होगा और सूर्यास्त तक चलता रहेगा। अखण्ड जप के समय अखण्ड दीपक प्रज्वलित रखना अनिवार्य रहेगा। अखंड जप करने वाले परिजन एक-एक घंटे की पारियों में बदलते रहेंगे। नये बैठने वाले पाटों पर रखी तश्तरी और पंचपात्र आचमनी से पवित्रीकरण करने के पश्चात् जप प्रारम्भ करते रहेंगे। उठते समय तीन आचमन करने के बाद स्थान खाली करते रहेंगे।

सायंकाल सूर्यास्त के साथ ही अखण्ड जप का समापन होगा, सायंकालीन आरती होगी। दूसरी ओर आयोजकगण प्रवचन मंच की तैयारी करेंगे। इस तैयारी के एक घंटे की अवधि में फिर श्रद्धांजलि समारोह के शान्तिकुंज के गीत कैसेट बजाये जाते रहेंगे।

साढ़े सात बजे से ९ बजे तक गीत संगीत एवं शान्तिकुंज के प्रतिनिधि परम पूज्य गुरुदेव के सूक्ष्म शरीर की शक्तियों, सामर्थ्यों और गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला प्रवचन संदेश देंगे। इस प्रकार द्वितीय दिन का आयोजन सम्पन्न होगा।

तृतीय दिन प्रातःकाल ध्यान-साधना से पूर्व दीक्षा संस्कार सम्पन्न होंगे। उसके तुरंत बाद अखण्ड जप का क्रम यथा पूर्व प्रारम्भ हो जायेगा। अन्य कोई संस्कार होने होंगे, तो वह अलग प्रवचन पंडाल में होंगे। दिन में शक्ति साधना स्थल पर किसी तरह की कोई भी शाब्दिक हलचल नहीं होगी। उस स्थान पर कठोरतापूर्वक मौन व्रत का पालन किया जायेगा।

व्यवस्थापकों को कोई बात करनी अनिवार्य होगी, तो वे संकेतों में करेंगे अथवा इतनी कम आवाज में, जिसे दो के अतिरिक्त तीसरा न सुन सके ।

तीसरे दिन अखण्ड जप अनुष्ठान का समापन सायंकाल दीपयज्ञ के साथ होगा । यदि आगन्तुकों की संख्या अधिक अनुमानित हो, तो साधना स्थल पर पूर्णाहुति मंत्र से विसर्जन कर दिया जाए और दीप यज्ञ प्रवचन पंडाल में सम्पन्न किया जाये, पर यदि संख्या सीमित ही रहे या साधना स्थल आकार में बड़ा हो, तो समापन दीप यज्ञ वहीं सम्पन्न कराया जा सकता है । तीसरे दिन ही दीपयज्ञ के पश्चात् अन्तिम परम पूज्य गुरुदेव की कारण सत्ता और मिशन की भावी संभावनाओं पर प्रवचन सम्पन्न होगा ।

जिस समय अखंड जप चल रहा होगा, शान्तिकुंज टोली दोनों दिन उस अवधि में देवस्थापना कार्यक्रम सम्पन्न करेगी । जप की टोलियों का निर्धारण करते समय जिन परिजनों के घर देव स्थापना होनी है, उनके जप के समय और देव स्थापना के समय का समायोजन पहले से ही बड़ी सूझबूझ के साथ आयोजकों को करना होगा, ताकि किसी तरह की कहीं कोई परेशानी न हो । स्मरणीय है कि भगवती गायत्री की देवस्थापना और उपासना प्रत्येक भारतीय परिवार में परम पुनीत कर्तव्य की भाँति करने का इस मिशन ने परम पूज्य गुरुदेव को आश्वासन दिया है, उसे सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ सम्पन्न किया और कराया जाये ।

चौथे दिन प्रातःकाल कारण शरीर का ध्यान और आधा घंटे का सामूहिक जप और पूर्णाहुति मंत्र के साथ समापन और एक घंटे स्थानीय कार्यकर्ताओं की गोष्ठी होगी । अगले स्थान की दूरी के आधार पर शान्तिकुंज से गई टोली भोजन वहीं लेकर अथवा रास्ते के लिए टिफिन लेकर वहाँ से विदाई लेगी । यह इस सम्पूर्ण अनुग्रह–अनुदान वर्षा कार्यक्रम का स्वरूप है । इसे छोटे या बड़े रूप में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप किया जा सकता है, पर साधना काल की पवित्रता और मर्यादाओं का अनुपालन सभी को एक समान करना अनिवार्य होगा ।

इस आयोजन की सफलता का सर्वोपरि आधार पूर्वापर तैयारी होगी । अखंड जप स्थल को वर्षा और धूप से बचाने के लिए पहले से वाटर प्रूफ शामियाने की व्यवस्था की जाये । इस स्थल को जी भर कर साफ़–सुथरा बनाकर झंडियों, बैनरों फूलों और जौ उगाकर जवारों से सजाया जाये । स्टेज, जहाँ चित्र स्थापना और अखंड दीपक रखा जाये, उसे प्रायः चार फुट ऊँचा रखा जाये । पहले दिन मंगल कलश यात्रा भी बैंड बाजों और झाँकियों सहित निकालें, जल कलश स्टेज के नीचे वाले भाग में श्रद्धापूर्वक प्रतिष्ठित किये जायें । साधना स्थल यथासंभव जन कोलहाल से अलग किन्तु महिलाओं के लिए सुरक्षित स्थान पर रखा जाये । उसे यथा संभव प्राकृतिक बनाने के लिए तोरण, वंदनवार और केले के पत्तों से आच्छादित किया जाये, ताकि वहाँ पहुँचते ही लोग देवभूमि पहुँचने की सी शान्ति और गरिमा अनुभव करें ।

पाक्षिक प्रज्ञा अभियान का प्रकाशन

श्रद्धांजलि समारोह के पश्चात् से मिशन विराट् रूप धारण करता जा रहा है । देश और विश्वव्यापी गतिविधियाँ जानने के लिए अपने परिजनों की जिज्ञासा के समाधान का एक ही रास्ता था मिशन का कोई समाचार पत्र निकाला जावे ।

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए "प्रज्ञा अभियान" नामक पाक्षिक का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है । लागत से भी नितान्त स्वल्प मूल्य मात्र १५ /– वार्षिक चंदे पर प्रकाशित पाक्षिक की सदस्यता के लिए शान्तिकुंज हरिद्वार से सम्पर्क करें ।

जप के लिए बैठने वालों के लिए आसन और सामने पूजा की तश्तरी में अक्षत, पुष्प, रोली, अगरबत्तीदान, माचिस तथा पंचपात्रआचमनी आदि रखने के लिए पाटा रखा जाये । पाटे पीले रंग के हों, तो अच्छा । जप के समय साधक पीले परिधान में रहें । पीला दुपट्टा ओढ़ लेने से भी काम चल सकता है । जो लोग पीले वस्त्र या उपवस्त्र का प्रबंध न कर पायें, उन्हें सम्मानपूर्वक पिछली पंक्तियों में बैठने का आग्रह किया जाये । महिला और पुरुषों की पंक्तियाँ

अलग-अलग रहें दोनों के बीच प्रायः चार फुट का अन्तर रखा जाये। महिलायें इस अवधि में केवल मंगल आभूषण धारण कर सकती हैं। सौंदर्य प्रधान आभूषण और वस्त्र कोई भी धारण न करें। साधकगण इन तीन दिन की अवधि में हलका और सुपाच्य भोजन लें, ब्रह्मचर्य व्रत पालन करें, क्रोध न करें, नशीली वस्तुओं का कतई कोई सेवन न करें। आयोजन स्थल की सुरक्षा के सभी उपाय आयोजकों को पहले से सुनिश्चित कर लेना होगा। जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसकी सूचना लिखित में प्रशासन को भी दे दी जाए। लाउडस्पीकर, हार्न, बिजली बैटरी के सभी प्रबन्ध पहले से किए जाएँ, ताकि अन्तिम समय पर उनकी भागदौड़ न हो। गीतों के कैसेट यद्यपि टोली भी लेकर चलेगी, पर पहले से वातावरण बनाने की दृष्टि से उनकी व्यवस्था आयोजक पहले से रखें। तश्तरी तो प्लास्टिक की भी हो सकती है, पर आचमनी-पंचपात्र स्टील या पीतल के पहले से मँगाकर रखने चाहिए। पूजन सामग्री, कलावा, धूप, दीप, पर्याप्त संख्या में यज्ञोपवीत और माचिस, अगरबत्ती यह सब पहले से तैयार रखें।

दीप यज्ञ के दिन सभी लोग अपनी-अपनी थालियाँ लेकर आएँगे, उनमें तीन आटे के दीपक बाती और एक घंटा तक जलता रह सकने, जितना घृत सभी परिजन साथ लेकर आयें। घी-बाती और अगरबत्ती की व्यवस्था आयोजक चाहें, तो अपनी ओर से भी रख सकते हैं।

कहने वाली बात नहीं है यह आयोजन एक अव्यक्त और अभूतपर्व महाशक्ति उपार्जित करेंगे। उसका पुण्यफल सारा देश, सारी दुनिया चिरकाल तक प्राप्त करती रहेगी।

यह कार्यक्रम सुविधा की दृष्टि से श्रृंखलाबद्ध बनेंगे। एक बार श्रृंखला बन जाने पर बीच में किसी को जोड़ना संभव नहीं होगा अतएव जिन्हें अपने यहाँ यह शक्ति साधना कार्यक्रम रखने हों वे अविलम्ब पत्र लिखकर अथवा तार से आवेदन करें। स्मरण रखें यह एकाकी कार्यक्रम नहीं है, अतएव आवेदन पत्र प्रायः ५ से लेकर ११ व्यक्तियों के हस्ताक्षरों सहित आने चाहिए। किसी को भी व्यक्तिगत सम्मान के लिए यह कार्यक्रम दिए नहीं जाएँगे। संघ शक्ति के अवतरण के लिए आयोजन की सभी व्यवस्थाएँ भी संघीय रहेंगी व्यक्तिवादी नहीं। सो यह परिपत्र जिन हाथों में पहुँचे, वे इसे अपने स्नेह सम्पर्क के सभी कर्मठ और मिशन में निष्ठा रखने वाले परिजनों को पढ़ा दें और सारी संभावनाओं पर परस्पर परामर्श के पश्चात् आयोजन के लिए आवेदन करें।

जिस आत्म शक्ति के उदय से संसार की समस्याएँ सुलझेंगी युग परिवर्तन का देव संकल्प पूर्ण होगा, वह बीज इन आयोजनों में सन्निहित है। इन्हें सम्पन्न कराने वाले स्वयं भी अक्षय पुण्य के पात्र और श्रेय के अधिकारी बनेंगे। इन साधनाओं से मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का एक बड़ा लक्ष्य पूर्ण होगा।

कार्यक्रम आगामी आश्विन नवरात्रि से ही प्रारंभ हो जायेंगे। इन आयोजनों की घोषणा इन दिनों चल रहे शिविरों और सम्मेलनों में भी की जा रही है, सो माँग का एक बड़ा भाग यहीं पूरा हो रहा है। अतएव जिन्हें यह कार्यक्रम रखने हों, वे अगस्त के प्रथम सप्ताह तक आवेदन अवश्य भेज दें।

—ब्रह्मवर्चस

इस कीर्ति स्तम्भ में अपना नाम लिखायें

२४० टोलियाँ निकालने के लिए शान्तिकुंज की गाड़ियाँ अपर्याप्त हैं। अपने जिन भावनाशील परिजनों के पास जीपें, एम्बैसडर अथवा मैटाडोर आदि उपलब्ध हैं उनसे अनुरोध है कि वे अपनी गाड़ी अपना ड्राइवर अक्टूबर ९१ से अप्रैल ९२ तक के लिए अथवा न्यूनाधिक समय के लिए शान्तिकुंज को अमानत के तौर पर इस विराट साधना में भागीदारी का अक्षय पुण्य मान कर दें ताकि साधना सम्मेलनों की भारी माँग को पूरा किया जा सके। ईंधन खर्च तथा आयोजन की अवधि में टूट-फूट मरम्मत की जिम्मेदारी शान्तिकुंज की होगी।

सहयोगियों से विनम्र निवेदन है कि गाड़ियों के टैक्स, इंश्योरेंश तथा वाहन चालक के लाइसेंस भेजने से पूर्व सुनिश्चित कर लें।

परम पूज्य गुरुदेव की स्मृति में डाक टिकट समारोह

भारत सरकार महापुरुषों की स्मृति और सम्मान में डाक टिकट निकालती है। परम पूज्य गुरुदेव की परम पुण्य तिथि पर २७ जून को इसी श्रंखला का भव्य-प्रथम दिवस आवरण समारोह नई दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में रखा गया। भारत के उप राष्ट्रपति महामहिम श्री शंकर दयाल जी शर्मा ने डाक टिकट विमोचन किया। फर्स्ट डे कवर और एक रुपये मूल्य के इस डाक टिकट का स्वरूप पत्रिका के मुख पृष्ठ पर मुद्रित है।

इस अवसर पर समारोह में वंदनीया माता जी भी उपस्थित थीं। भारत सरकार के प्रमुख न्यायाधीश माननीय श्री रंगनाथ जी मिश्र, भूतपूर्व केन्द्रिय मंत्री महाराज कर्ण सिंह, संचार राज्य मंत्री श्री नामड्डू, पूर्व संचार मंत्री श्री संजय सिंह जी तथा अन्य गण्यमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। दिल्ली के नागरिकों के अतिरिक्त सारे देश भर के मूर्धन्य मिशनरी कार्यकर्ता भी आयोजन में सम्मिलित हुए। साढ़े चार हजार क्षमता का स्टेडियम पीतवस्त्रधारी नर नारियों से खचाखच भरा था। देखने से ऐसा लगता था मानों कुछ क्षणों के लिए वहाँ सचमुच स्वर्ग उतर आया हो। शान्ति और श्रद्धा का जो वातावरण शान्तिकुंज में दिखाई देता है वही व्यवस्था और अनुशासन यहाँ भी साक्षात् विराजमान था।

इस तरह के डाक टिकट विमोचन समारोह भारत सरकार का डाक विभाग आयोजित करता है। अधिकारियों का कहना है अब तक कोई भी आयोजन इतना भव्य और अनुशासित नहीं हुआ। विमोचन के दिन ही इतनी बड़ी संख्या में टिकट तथा प्रथम दिवस आवरण बिके जितने अब तक के इतिहास में कभी नहीं बिके। अधिकारियों को उसी समय की माँग के आगे नतमस्तक होना पड़ा। अभी भी यह स्थिति है कि केन्द्रिय प्रशासन और उनका टिकट प्रकाशन केन्द्र नासिक इस असमंजस में है कि सारे देश से आई भारी माँग की आपूर्ति किस तरह की जावे। ८० रुपये के महँगे डाक टिकट एलबम की माँग को अभी तक भी पूरा नहीं किया जा सका है।

आयोजन से पूर्व शान्तिकुंज में सम्पन्न १७ से २१ के विशेष प्रथम पुण्य तिथि समारोह में पधारे तीस हजार परिजनों का तथा २२ से २६ जून गुजरात के पटेल सम्मेलन का एक बड़ा वर्ग इस आयोजन के लिए शान्तिकुंज में रुका हुआ एक एक दिन गिन रहा था। २७ जून की प्रातःकाल उमड़ा उत्साह देखते ही बनता था। व्यक्तिगत गाड़ियों और बसों का पूरा जुलूस शान्तिकुंज से ही निकला और रुड़की, मुजफ्फरनगर, मेरठ मोदीनगर, मुरादनगर तथा गाजियाबाद तक पहुँचते-पहुँचते काफिला इतना लम्बा हो गया कि कभी कभी दिल्ली में यह स्थिति हो जाती थी कि एक स्टाप से दूसरे स्टाप तक केवल इस डाक टिकट तीर्थ यात्रा की ही गाड़ियाँ नजर आती थीं। बैनर्स से सजी और गीत गाती गाड़ियों का काफिला ठीक चार बजे स्टेडियम पहुँच गया। राजधानी में उस दिन मौन क्रान्ति की आभा स्पष्ट विराजमान थी।

परम पूज्य गुरुदेव की प्रशस्ति में गीत के साथ आयोजन का शुभारंभ ठीक ५ बजे हुआ। सर्व प्रथम डा. प्रणव पंड्या ने अभ्यागतों का स्वागत किया। महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय ने डाक टिकट विमोचन किया। सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश श्री रंगनाथ जी मिश्र अपने उद्गार व्यक्त करते हुए भाव विभोर हो उठे। सभी वक्ताओं ने इस आयोजन को भारत के इतिहास की एक विलक्षण किन्तु महान घटना बताया और आशा व्यक्त की यह मिशन राष्ट्र की उन सभी आकांक्षाओं को एक दिन अवश्य पूरा करेगा जिसकी ओर आज सारे राष्ट्र की निगाहें टिकी हुई हैं।

डाक टिकट कहाँ से लें? पूज्य गुरुदेव की स्मृति में निकाले गये १ रुपये का यह डाक टिकट भारत के सभी प्रमुख डाकघरों में उपलब्ध है जिन शहरों में न पहुँचा हो वे टिकट फर्स्टडे कवर तथा डाक टिकट एलबम शान्तिकुंज हरिद्वार से प्राप्त कर सकते हैं।

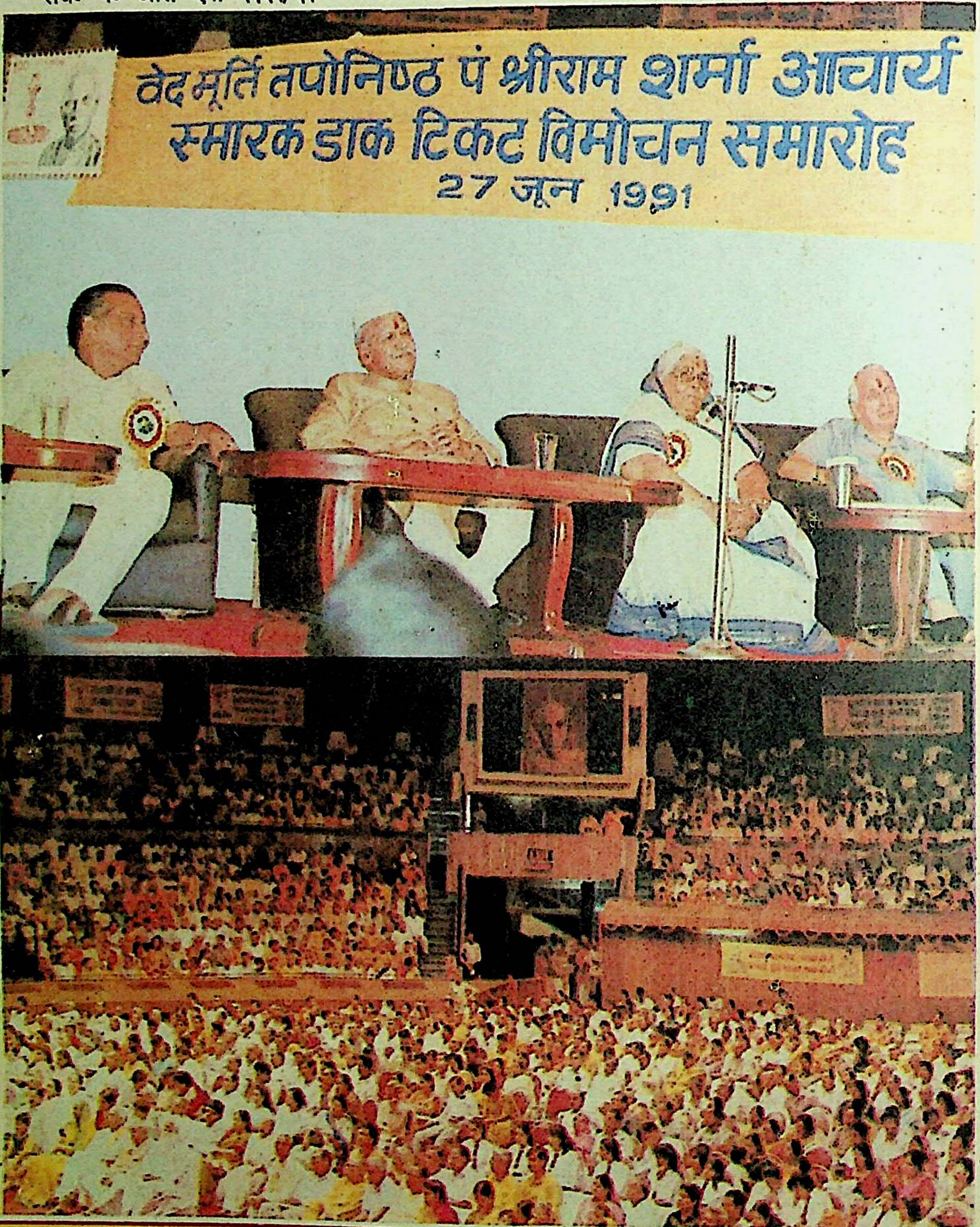
डाक से भेजने में निरर्थक पोस्टेज लगेगा। किसी आते जाते के हाथ ही मँगाने चाहिए।

इसी अवसर पर देव संस्कृति का संदेश विदेश को जा रही टोली का महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय ने तिलक किया तो चारों ओर आशा और विश्वास की लहर घूम गई। हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। वंदनीया माता जी की भाव संवेदना से आगन्तुक अतिथि और अपने सभी परिजन सजल हो उठे। इस मिशन को जन जन तक पहुँचाने का आत्म विश्वास हर चेहरे में झलक रहा था।

—ब्रह्मवर्चस

सम्पादक—डॉ. प्रणव पण्ड्या प्रकाशक मुद्रक—मृत्युंजय शर्मा अखण्ड-ज्योति संस्थान द्वारा जन जागरण प्रेस मथुरा में मुद्रित।

अखण्ड-ज्योति मासिक
रजिस्टर्ड नं० एम.टी.आर. ९८
रजि० नं० आर. एन. २१६२/५२
लाइसेन्स संख्या एम.टी.आर. ८ डाक व्यय की पहले अदायगी किये बिना डाक में डालने के लिये लाइसेन्स प्राप्त



तालकटोरा स्टेडियम में डाक टिकट विमोचन समारोह में परिजनों के बीच संचार उपमंत्री, महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय वन्दनीया माताजी एवं सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ।